बापू के चरणों में

—एक श्रद्धांजलि—

लेखक

व्रजकृष्ण चांदीवाला

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

प्रकाशक—

र्तण्ड उपाध्याय, मंत्री

ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

दूसरी बार : १९४९

मूल्य

अढाई रुपए

मुद्रक—

देवीप्रसाद शर्मा

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस

नई दिल्ली

आशीर्वाद

श्री व्रजकृष्ण चांदीवाला उन मूक सेवकों में हैं, जो काम करते हैं, पर अपनी सेवाओं की खबर दूसरों तक पहुंचने नहीं देते। पूज्य महात्मा गांधीजी के साथ उन्होंने बहुत दिन बिताये और बड़ी सेवाएं की हैं। उनके चरणों में रह कर उन्होंने जो देखा और सीखा, वह सबके लिए बहुत कीमती अनुभव है और वह इस पुस्तक में बड़े सरल और रोचक रूप में उपस्थित है। पाठक इसे पढ़कर लाभ उठावेंगे।

नई दिल्ली
१८-४-४९

राजेन्द्र प्रसाद
(अध्यक्ष-विधान परिषद्)

दो शब्द

१९४६ में जब गांधीजी वाल्मीकि मन्दिर में ठहरे हुए थे तो एक मित्र ने आग्रह किया कि मैं बापूजी के साथ के अपने संस्मरण लिखकर उनके अखबार में दूं। मैं कोई लेखक तो हूं नहीं, इसलिए मैंने उनकी बात को उस वक्त टाल दिया, मगर उनका वह आग्रह चलता ही रहा। आखिर मैंने साधारण रूप से कुछ लिखना शुरू किया; लेकिन उसमें विशेष प्रगति न हो पाई।

बापूजी की गत वर्ष-गांठ पर उस लेख को पूरा करने का विचार फिर से उठा, मगर काम की अधिकाई के कारण वह विचार छोड़ देना पड़ा। अचानक ३० जनवरी को प्रलयंकारी दुर्घटना हो गई और बापूजी अपनी पुण्य-स्मृतियां छोड़कर हमसे सदा के लिए विदा हो गए। इस घटना के बारे में जो विविध समाचार प्रकट हुए, उनमें मुझे कुछ-न-कुछ भूल मालूम हुई, इसलिए मैंने उस दिन का सही ब्यौरा प्रकाशित करने का विचार किया, साथ ही बापूजी के सम्पर्क में रहकर जो देखा और सुना था, उसको भी कलमबन्द करने का निश्चय कर लिया और अस्थि-विसर्जन के बाद इलाहाबाद से लौटकर एक छोटा-सा लेख तैयार किया।

मार्च के अन्त में रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का जो सम्मेलन वर्धा में हुआ, उसमें देवदासजी, मार्तण्डजी, कृष्ण नायरजी आदि हम छः-सात जने साथ-साथ गए थे। ट्रेन में मैंने वह लेख मित्रों को सुनाया। उन्होंने उसे पसन्द किया और मार्तण्डजी ने उसे सस्ता साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया। इससे मेरी हिम्मत कुछ बढ़ गई। चौबीस वर्षों की स्मृतियां कुछ कम तो थी नहीं! धीरे-धीरे

वे याद आने लगीं और मैं नोट करता गया। दिल्ली वापस आकर मैंने १९२९ से लिखी अपनी डायरी को सामने रखकर बापूजी के संबंध की घटनाओं को सिलसिलेवार उतार डाला और इस प्रकार यह पुस्तक तैयार हो गई।

इन्हीं दिनों हमारे राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने यह आदेश निकाला कि हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी वार्षिक आमदनी में से कम-से-कम दस दिन की आय श्रीगांधी राष्ट्रीय कोष में समर्पण करे। मेरी अपनी तो कोई कमाई है नहीं, तब कोष में क्या दिया जाय, यह प्रश्न मेरे सामने आया।

चौबीस वर्ष की मेरी स्मृतियों की यह माला ही बापू के चरणों में मेरी तुच्छ भेंट है। इसकी बिक्री से जो भी द्रव्य प्राप्त होगा वह स्मारक-कोष में चला जायगा, यह प्रकाशक ने स्वीकार कर लिया है।

जिन भाइयों ने इस पुस्तक की तैयारी और प्रकाशन में मेरी सहायता की है, उनका, विशेषकर बंधुवर चंद्रगुप्त विद्यालंकार (सम्पादक—'विश्व-दर्शन') तथा श्री बांकेबिहारी भटनागर एम. ए. (सह-सम्पादक—'हिन्दुस्तान') का मैं आभारी हूं।

१, नरेन्द्र प्लेस, नई दिल्ली
३०-८-४८
अष्टम निधन तिथि
गांधी सम्वत् ८०

—ब्रजकृष्ण

विषय-सूची

बापू के चरणों में

: १ :

प्रथम परिचय

गांधीजी को मैंने पहली बार सन् १९१८ में देखा। तब मैं सेंट स्टीफेंस कॉलेज में पढ़ता था। आचार्य एस० के० रुद्र हमारे प्रिंसिपल थे। वह गांधीजी के परम मित्र थे। उन दिनों गांधीजी जब कभी दिल्ली आते तो उन्हीं के घर ठहरते थे। यूरोप का प्रथम महायुद्ध चल रहा था और यहां होमरूल लीग का जमाना था। लार्ड चैम्सफोर्ड ने दिल्ली में हिन्दुस्तान के प्रमुख व्यक्तियों का एक सम्मेलन किया था और गांधीजी उसीमें शरीक होने आए थे। उस जमाने में वह खादी की धोती, कुरता और टोपी पहना करते थे। गांधी-टोपी तभीसे प्रचलित हुई है।

गांधीजी का नाम सबसे पहले मैंने दक्षिण अफ्रीका के संबंध में सुना था। उनकी पहली पुस्तक 'मेरे जेलके अनुभव' मेरे हाथ में आई और उसमें मैंने पढ़ा कि वहां के जेलों में रहकर उन्होंने क्या-क्या कष्ट सहे। तभीसे मैं उनकी ओर खिंच गया और उनके दर्शन पाने तथा उनकी सेवा करने की उत्कट अभिलाषा मेरे मन में पैदा हो उठी। रुद्र साहब के घर उनके दर्शन पाकर मैंने अपनेको कृतार्थ माना, मगर मुझमें इतना साहस न हुआ कि तुरंत उनके पास चला जाता और उनसे बातें करने लगता, या उनका कोई काम करने लगता। मैं स्वभाव से ही बड़ा संकोची हूं और भीरु भी।

उन दिनों भी गांधीजी बकरी का ही दूध पिया करते थे। उनके आश्रम के साथी छोटेलालजी दूध लेने जाया करते थे। रुद्र साहब का बैरा था मोहम्मद। उससे कहकर दूध लाने का काम मैंने अपने जिम्मे ले लिया और इतने से ही संतोष माना।

१९१८ की कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिल्ली में हो रहा था।

पं० मदनमोहन मालवीय उसके प्रधान थे। उनके लिए जो अंगरक्षक घुड़सवार टुकड़ी बनाई गई थी, उसमें मैं भी एक स्वयंसेवक था। अधिवेशन का स्थान पत्थरवाला कुआं, लालकिले के सामने, था। अपने डेरे में जाते हुए पंडितजी ने गुजरात से आए प्रतिनिधियों से पूछा—"मोहनदास नहीं आए ?" उत्तर मिला—"नहीं, महाराज, वह बीमार हैं। उन्हें पेचिश हो गई है।" मालवीयजी उस समय के बड़े नेताओं में गिने जाते थे। गांधीजी को जनता ने महात्मा की पदवी दे तो दी थी, किंतु उनके साथी उनको नाम से ही पुकारते थे। बाद में तो वह सबके बापू बन गये।

प्रथम महायुद्ध नवम्बर, १९१८ में समाप्त हुआ और भारत को गुलामी की जंजीरों में अधिक जकड़ने के लिए मार्च १९१९ में रौलेट ऐक्ट बनाया गया, जो देश में काले क़ानून के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कानून की भयंकरता सबसे पहले गांधीजी ने अनुभव की और उन्होंने उसके विरुद्ध एक महान् आन्दोलन खड़ा कर दिया। जनता को जाग्रत करने के लिए उन्होंने देश का भ्रमण आरम्भ किया और भाषणों तथा लेखों द्वारा रौलेट ऐक्ट की भयंकरता का दिग्दर्शन कराया। उसी वर्ष उन्होंने अपना साप्ताहिक पत्र 'यंग इंडिया' जारी किया था।

काले कानून के विरोध में उन्हीं दिनों दिल्ली में, पत्थरवाले कुंए के मैदान में, एक विराट् सभा हुई। गांधीजी का यह पहला प्रवचन था जो मैंने सुना। मैं मंच के पास दबा-दबाया खड़ा था, मन में यह चाह थी कि एक बार उनके चरण छूकर अपने को कृतार्थ कर लूं। वह सभा में प्रवेश करने के लिए आगे बढ़े और मैंने अपना सारा साहस बटोरकर उनके चरण-कमलों की धूलि अपने मस्तक पर लगा ली।

क्रमशः देश में काले कानून के विरुद्ध आग भड़क उठी। जनता में नये जीवन का संचार हुआ। पुराने युगों को पीछे ढकेलकर गांधी-युग ने प्रवेश किया। रात-दिन चारों ओर 'महात्मा गांधी की जय' के नारे गूंजने लगे। रात में नींद खुल जाय तब भी वही नारा सुनाई दे। गांधीजी के मुंह से निकला शब्द वेदवाणी माना जाने लगा। किसी की क्या मजाल जो उसका उल्लंघन करने का साहस करे!

खबर आई कि ३० मार्च, १९१९ को देश भर में हड़ताल रहेगी और दिलों को पवित्र बनाने के लिए २४ घंटे का उपवास रखा जायगा। यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल कर दी गई थी मगर इसकी सूचना देहली में समय पर नहीं पहुंच सकी। इसलिए यहां ३० मार्च और ६ अप्रैल दोनों दिन हड़ताल रही।

दिल्ली स्वतंत्रता-युद्ध में कभी भी हिन्द के किसी दूसरे शहर से पीछे नहीं रही। वह हकीम अजमलखां और स्वामी श्रद्धानन्दजी का जमाना था। सारे शहर में एक लहर-सी दौड़ गई। ३० मार्च, १९१९ की जिनको याद है वे आज भी रोते हैं कि हाय, हिन्दू-मुस्लिम एकता के वे दिन क्या हुए! ऐसी मुकम्मिल हड़ताल कभी देखने में न आई थी। १७ दिन तक पुलिस का राज्य न था। नाम को एक चोरी नहीं हुई। लोगों ने ७२ घंटे तक चूल्हों में आग नहीं जलाई। एक ओर देश-प्रेम की लहर और दूसरी ओर नौकरशाही से टक्कर लेने की चाह दिलों में उमड़ रही थी। छः अप्रैल को फिर से जबरदस्त हड़ताल हुई और उपवास रखा गया। पंजाब, जो गांधीजी के पीछे जान देता था, बेकाबू होने लगा। ८ अप्रैल को गांधीजी फौरन पंजाब के लिए रवाना हो गये। हजारों की भीड़ दिल्ली के स्टेशन पर उनका स्वागत करने को खड़ी थी, किंतु गाड़ी आने पर अकेले महादेव-भाई डिब्बे से उतरे और उन्होंने बताया कि गांधीजी तो पलवल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिये गए। चारों ओर सन्नाटा छा गया, मगर लोगों का उत्साह टूटने के बजाय और तीव्र हो गया, जिसका परिणाम जालियां-वाला बाग की १३ अप्रैल की दुर्घटना और पंजाब का फौजी कानून हुआ। कांग्रेस जांच कमेटी और सरकारी हंटर कमेटी बैठी। इस सिलसिले में गांधीजी को कई मास दिल्ली और पंजाब में ठहरना पड़ा।

१९२० में खिलाफत और असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुए और गांधीजी कई बार दिल्ली आए। अब वह डा० अंसारी की दरियागंज वाली कोठी में ठहरा करते थे। उन दिनों भी मैं उनके यहां बकरी का दूध पहुंचाया करता था। डा० साहब बड़े प्रेम से मुझे 'गांधीजी की ग्वाल' कहा करते थे। मैं गांधीजी के इधर-उधर मंडराया करता था, मगर

बात करने का साहस अब भी नहीं आया था। मैंने कॉलेज की पढ़ाई छोड़ दी, चरखा चलाना शुरू किया, बम्बई जाकर चौपाटी पर कपड़ों की होली में अपने विदेशी कपड़े भी भेंट कर आया और खादी पहनना शुरू कर दिया, फिर भी बापूजी से बात करने की हिम्मत न आ सकी। पहली बार जब घर से चप्पल पहन कर बिना जुराबों के गली में निकला था तो ऐसा लगा मानों सारे दूकानदार मेरी ही ओर देख रहे हैं। 'यंग इंडिया' और 'हिन्दी नवजीवन' पढ़ना शुरू कर दिया था और गांधीजी की हिदायतों के अनुसार चलने का प्रयत्न करता रहता था। आखिर एक दिन सारा साहस बटोर कर मैंने अपने खून से बापूजी को पहला पत्र लिखा। वह उन्हें मिला भी या नहीं, मैंने उनसे कभी नहीं पूछा।

१९२२ की बात है। गांधीजी बारडोली सत्याग्रह और करबन्दी आंदोलन की तैयारी में लगे हुए थे। उन्हें दम लेने का भी अवकाश नहीं था। मैं यही सोचा करता था कि इतना काम वह करते कैसे होंगे? एक दिन शाम को जब मैं घूम कर लौटा तो १० फरवरी का 'यंग इंडिया' पढ़ने लगा। उसमें जब यह समाचार पढ़ा कि चौरी-चौरा कांड के कारण गांधीजी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया है तो मेरे सिर में चक्कर-सा आ गया और मैं लम्बी सांस लेकर बैठ गया। उसके थोड़े ही दिनों बाद १० मार्च को गांधीजी साबरमती आश्रम में गिरफ्तार कर लिये गए और १८ तारीख को छः वर्ष के लिए जेल भेज दिये गए।

दो वर्ष जेल काटने के बाद गांधीजी ७ फरवरी, १९२४ को बीमारी के कारण रिहा कर दिये गए। उनका अपेंडिसाइटिस का ऑपरेशन हुआ था। वह बहुत कमजोर हो गए थे और बम्बई के पास जूहू में हवा बदलने के लिए ठहरे हुए थे। मैं भी उनके दर्शन करने वहां गया और साधारण दर्शकों की भांति बंगले के बाहर बैठा रहा। वहां मुझे कोई जानता तो था नहीं, केवल एंड्रूज साहब मुझ से परिचित थे। गांधीजी संध्या समय समुद्र के किनारे घूमने जाया करते थे। अतः जब वह निश्चित समय पर एंड्रूज साहब के साथ बाहर निकले तो मैंने उनके चरण छुए और भेंट चढ़ाकर घर लौट आया। वहां भी कुछ कहने का साहस न हुआ।

इस प्रकार बापूजी के पीछे-पीछे घूमते मुझे छः वर्ष हो चुके थे। शायद मेरे दिल की लगन देखकर ईश्वर को मुझ मूढ़ पर तरस आगया और उसने ऐसा अवसर पैदा कर दिया जिससे मैं उस महान् आत्मा की सेवा में स्थायी रूप से लग जाऊं।

बात जुलाई, १९२४ की है। गत दो वर्षों में देश में भारी परिवर्तन आ चुका था। हिन्दू-मुस्लिम एकता की जगह सांप्रदायिक झगड़ों का दौरदौरा था। भारत के हर कोने से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के समाचार आ रहे थे। दिल्ली भी इस आग से बच न पाई थी। मोपला-कांड दक्षिण में और कोहाट-कांड उत्तर-पश्चिम में होकर चुके थे। गांधीजी कोहाट जाने के लिए दिल्ली आए हुए थे और मौ० मुहम्मदअली के मकान पर कूचा चेलां में ठहरे हुए थे। वह मोपलाओं की सहायतार्थ कपड़े जमा कर रहे थे। मैंने भी अपनी मां से मांग कर पुराने कपड़ों की एक गठरी जमा की और उसे लेकर मौलाना साहब के घर पहुंचा।

पहली मंजिल पर एक ओर मौलाना साहब के अखबार का दफ्तर था और दूसरी ओर के कमरे में गांधीजी ठहरे हुए थे। जीना चढ़ कर मैं एक बड़े सायबान में पहुंचा तो मुझे मेरी ही उम्र के एक नौजवान के पास ले जाया गया और 'यह गांधीजी के पुत्र देवदास हैं,' ऐसा कहकर उनसे मेरा परिचय कराया गया। वह लेटे-लेटे तकली पर सूत कात रहे थे। मैंने कपड़े की गठरी उनको सौंपी और उनसे कुछ बातें कीं। उन्होंने उसी समय मेरा परिचय महादेवभाई से कराया।

अब मेरा उस घर में आना-जाना होने लगा और परिचय कुछ मित्रता के रूप में बदला, यहां तक कि एक दिन मैंने देवदासजी और महादेव-भाई को भोजन का निमंत्रण दिया। इतने पर भी अभी मुझमें गांधीजी के पास जाने और उनसे बातचीत करने का साहस न आया था।

एक दिन आखिर वह शुभ घड़ी भी आई और महादेवभाई ने गांधीजी के पास ले जाकर मेरा उनसे परिचय कराया। वर्षों की साध पूरी हुई और हर्ष से मन नाच उठा। उसी दिन से मैं उनके प्रेम के धागे में बंध गया।

: २ :

करुणा का पात्र

कुछ दिन दिल्ली ठहर कर गांधीजी कोहाट चले गए और वहां से सितम्बर मास में लौटे। इस बार भी वह मौलाना मुहम्मदअली के ही घर ठहरे। जहां मेरे दिल में वर्षों की यह चाह थी कि गांधीजी के निकट पहुंचूं वहां मैं इस बात के भी स्वप्न देखा करता था कि वह किसी दिन मेरे घर पधारेंगे और भोजन करेंगे। अपनी यह अभिलाशा मैंने महादेवभाई पर प्रकट की। मैंने उनसे पूछा--"क्या गांधीजी किसी के घर आकर भोजन कर सकते हैं?" और जब 'हां' में उत्तर पाया तो मेरे आनंद और आश्चर्य का पार न रहा। महादेवभाई मुझे गांधीजी के पास ले गये। मेरी इतनी हिम्मत कहां जो मुख से कुछ बोलूं! महादेवभाई ने ही मेरी ओर से निमंत्रण दिया और तुरंत ही स्वीकृति मिल गई। दूसरे दिन अर्थात् १७ सितम्बर, १९२४ को मेरे घर आने का तय हुआ।

इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता था? मेरे पैर जमीन पर न टिकते थे, ऐसा लगता था मानों मैं हवा में उड़ा जा रहा हूं। लोगों को यह सुसंवाद कैसे सुनाऊंगा, कैसे उनका स्वागत करूंगा, उनको क्या-क्या खिलाऊंगा, वह सकरी गलियों में से कैसे मेरे घरतक पहुंचेंगे, सारी गली तो दर्शकों से भर जायगी--इसी विचारधारा में बहता हुआ मैं घर पहुंचा। समाचार सुनकर सारा घर खुशी से भर गया और मैं दूसरे दिन के लिए तैयारी करने में लग गया।

मगर, 'मोरे मन कछु और है, कर्त्ता के कछु और'। दूसरे दिन सवेरे-सवेरे टेलीफोन की घंटी बजी। महादेवभाई बोल रहे थे। आवाज में कम्पन था। उन्होंने कहा--"व्रजकृष्ण, तुमने सुन लिया?"

"क्या," मैंने घबराहट से पूछा।

"बापू ने तो २१ दिन का उपवास शुरू कर दिया ह", उत्तर मिला।

सुनते ही मेरे पैरों तले की मिट्टी खिसक गई। कहां भोजन करने

बापू का मेरे घर आना और कहां उनका २१ दिन का लम्बा उपवास ! वर्षों से जिस आस को लिये फिर रहा था, वह जब पूरी होने को हुई तो विधि से मेरा इतना बड़ा सौभाग्य सहा न गया और उसने निर्दयतापूर्वक उसे मुझ से छीन लिया। मगर मेरी बजाय उस महात्मा को दण्ड क्यों ? मन को भारी वेदना हुई और घोर लज्जा भी कि मेरे घर का निमंत्रण स्वीकार करते ही उन्हें २१ दिन निराहार रहना पड़ेगा। सिर लटकाए मौलाना के घर पहुंचा। महादेवभाई ने सारी हकीकत सुनाई और मुझे वह गांधीजी के पास ले गए। वह तो बैठे हंस रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही न हो। कहने लगे—"मैं तो तेरे घर चलने को तैयार हूं, मगर आज भोजन न कर सकूंगा। तू आज ले चलना चाहता है या उपवास समाप्त होने के बाद ?"

मैंने कहा—"अब तो मैं आपको उपवास समाप्त होने के बाद ही कष्ट दूंगा। आज ले जा कर क्या करूंगा ?" मेरा यह निर्णय उन्हें भी पसंद आया।

जहां गांधीजी का यह लम्बा उपवास सबको दुःख और चिंता में डालने वाला था, वहां मेरे लिए वह उनके निकट सम्पर्क में आने का साधन बन गया। उपवास की खबर सारे देश में फैल गई और दिल्ली में एकता सम्मेलन बुलाया गया। देश-भर के नेता दिल्ली में जमा होने लगे। मौलाना का घर था तो खासा बड़ा, लेकिन उनके 'कामरेड' व 'हमदर्द' अखबार भी वहीं से निकलते थे, इसलिए उसमें सारे नेता ठहर नहीं सकते थे। मैंने अपना मकान, जो काफी बड़ा था, गांधीजी के अतिथियों के ठहरने के लिए पेश किया। देवदासजी साबरमती चले गये थे, उनकी जगह रामदासभाई आगये थे। मुझे यह काम सौंपा गया कि महादेवभाई जिन्हें कहें उनके ठहरनेका प्रबन्ध मैं अपने घर पर करूं। महादेवभाई, रामदासभाई और मैं स्टेशन पर जाते थे और गांधीजी के जो निजी आदमी आते थे वे मेरे यहां ठहराए जाते थे। इस प्रकार मेरे घर करीब पच्चीस-तीस अतिथि ठहराए गये और मुझे सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री राजगोपालाचार्य, राजेन्द्रबाबू, श्री शंकरलाल बैंकर, दीनबन्धु एंड्रूज आदि महा-पुरुषों के आतिथ्य-सत्कार का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

उपवास का प्रथम सप्ताह गांधीजी ने मौलाना के घर व्यतीत किया। मैं उनको हर सायंकाल मोटर में ताजी हवा खिलाने के लिए शहर के बाहर लेजाया करता था। पूज्य बा मेरे घर स्नान करने आती थीं, क्योंकि वहां उन्हें अधिक सुविधा मिलती थी। दूसरे सप्ताह गांधीजी की कमजोरी बढ़ने लगी। डा० अंसारी और डा० जीवराज मेहता उनकी देख-भाल कर रहे थे, दीनबन्धु एंड्रूज उनकी शुश्रूषा करते थे। कमजोरी बढ़ जाने पर गांधीजी सब्जीमंडी में ला० सुलतानसिंह की कोठी पर पहुंचा दिये गये। मालवीयजी महाराज उन्हें भागवत सुनाने आते थे। उस वर्ष दिल्ली में घोर वर्षा हुई। कई दिनों तक सूर्यनारायण के दर्शन नहीं हुए। जमना में बाढ़ आई और इतनी आई कि लोग कहने लगे कि जमना गांधीजी के चरण छूने जा रही है।

ईश्वर की कृपा से २१ दिनों का वह लम्बा काल कुशलतापूर्वक व्यतीत हो गया। ८ अक्तूबर को बापू ने अपना उपवास प्रार्थना के साथ समाप्त किया। धीरे-धीरे दुर्बलता दूर होने लगी और वह घूमने जाने लगे। वह प्रायः शाम के समय पास वाली पहाड़ी पर घूमने जाया करते थे। जब उनमें शक्ति आगई तो एक दिन मैंने उन्हें घर चलने की याद दिलाई।

अक्तूबर मास समाप्त हो रहा था। कुछ-कुछ सर्दी पड़ने लगी थी। घर जाने का दिन निश्चित हुआ। तय हुआ कि पूज्य बा और बापू के अन्य साथी घर पर पहले पहुंच जायेंगे और गांधीजी हकीम साहब और मौलाना मुहम्मदअली के साथ शाम की सैर करके आयेंगे। मोटर लेकर पहाड़ी पर पहुंच गया और वहां से घर तक वह मोटर में आये। मेरे छोटे-से अंधेरे कमरे में बैठकर उन्होंने भोजन किया—फल और दूध। उन दिनों वह सूर्यास्त से पहले ही भोजन कर लिया करते थे। मैं दिल में डर रहा था कि कहीं सूर्यास्त न हो जाय और बापू खाना बन्द करदें। सब साथियों ने भी थोड़ा-थोड़ा कलेवा किया। सारा घर और गली दर्शकों से भर गई। बड़ी कठिनाई से वह वापस जा सके। जब वह रवाना होने लगे तो उन्होंने मौ० मुहम्मदअली का जूता, जो दूसरे जूतों से नीचे दब गया था, झट से उठा कर मौलाना साहब के सामने

रख दिया। मैं तो हैरान रह गया। जिसके चरणों की धूलि मस्तक पर लगाने के लिए असंख्य जन लालायित रहते हों, वह दूसरों का जूता इस प्रकार उठाले ? लेकिन यही तो उनकी महानता थी। अपनी नम्रता से उन्होंने सबको मोह लिया था।

वह दिन मेरे लिए एक महान् दिन था। वर्षों से मन में जो चाह लिये फिरता था उस दिन पूरी हो गई थी।

इसके बाद वह जब भी दिल्ली आते थे तो प्रायः मेरे घर आते रहते थे। एक बार १९२८ में वह गुरुकुल कांगड़ी के सालाना जलसे से लौट रहे थे। गाड़ी सुबह पांच बजे दिल्ली पहुंचती थी। मैं उनके साथ ही था। वह साबरमती आश्रम जा रहे थे और रास्ते में उन्हें कुछ घंटे दिल्ली में ठहरना था। मैंने कहा कि यदि आप मेरे घर ठहरें तो प्रबन्ध करने के लिए कुछ पहले पहुंच जाऊं। उन्होंने मंजूरी दे दी। मैं मुरादाबाद होकर कुछ घंटे पहले दिल्ली पहुंच गया। उचित प्रबंध कर मैं उन्हें लिवाने स्टेशन गया। उन दिनों मेरे पास मोटर न थी। बापू स्टेशन से पैदल ही चल कर घर आये। कम्पनी बाग का दरवाजा बंद था, इसलिए उन्हें उसकी नीची दीवार फांदनी पड़ी। कुछ घंटे घर पर ठहर कर वह साबरमती चले गये।

१९२९ में जब बापूजी ने अल्मोड़े की यात्रा की तो मैं भी उनके साथ था। उन्हें वहां से दिल्ली आना था। पूज्य बा ने कहा कि दिल्ली में ब्रजकृष्ण के घर ठहरेंगे। मगर बापू ने कहा—"ब्रजकृष्ण का अपना घर कहां है ? वह तो भाइयों के साथ रहता है। वह जब अपना घर बनायेगा तब हम उसके यहां ठहरेंगे।" और तब से उन्होंने मेरे घर ठहरना बंद कर दिया। मैंने भी उनसे घर चलने का आग्रह नहीं किया।

१९३३ में मैं सख्त बीमार हुआ। उस वर्ष गांधीजी हरिजनों के लिए देश का दौरा कर रहे थे। उसी सिलसिले में वह दिल्ली आ रहे थे। मेरी बीमारी की खबर उन्हें मिल चुकी थी। १० दिसम्बर को वह दिल्ली पहुंचे। स्टेशन पर ही उन्हें मेरी खबर पहुंचाई गई। उस दिन मेरी हालत बहुत खराब थी। बापू स्टेशन से सीधे मुझे देखने मेरे घर

आये। आकर मेरी चारपाई पर बैठ गये। मैं बहुत कमजोर था। कठिनाई से हाथ बढ़ाकर मैंने उनके चरण छुये। मुझे १०५ डिगरी बुखार था। डाक्टर अन्सारी का इलाज था। वह भी कुछ परेशान थे। अपने लड़के के समान ही वह मुझे मानते थे। बापू ने कहा कि इलाज तुम डाक्टर साहब का ही रखना। वह खुदा-परस्त आदमी है। अगर उनके हाथों मर भी गये तो कल्याण ही होगा। भविष्य की चिन्ता छोड़कर केवल राम-नाम भजते रहो और सब चिंताओं को छोड़ दो।

बापू के चरण छूते ही मेरी बीमारी ने पलटा खाया। अब के वह पांच दिन दिल्ली ठहरे --दस से चौदह दिसम्बर तक। सोमवार को उनका मौन था। दस मिनिट के लिए वह उस दिन भी आए। उन्होंने लिख कर बातें कीं और राम-नाम का उपदेश दिया। वह १२ दिसम्बर को भी आए और उन्होंने अपने सामने ही मुझे डाक्टरों को दिखाया। चौथे दिन वह आ न सके, मगर पांचवें दिन दिल्ली से जाते समय वह आशीर्वाद देने आये और मुझे नया जीवन दे गये। मैं शीघ्र ही अच्छा होने लगा। तब से मैंने यही माना है कि यह जीवन उनका ही दिया हुआ है।

१९३१ की बात है। मेरे एक डाक्टर मित्र थे। उनकी पत्नी को तपेदिक हो गई थी। नींद नहीं आती थी। उनकी पत्नी ने इच्छा प्रकट की कि यदि गांधीजी के हाथ का छुआ गंगाजल पीने को मिल जाय तो नींद आने लगे। मित्र डाक्टर ने मुझे लिखा। मैंने बापू से यह बात कही। बापू ने पहले तो इन्कार कर दिया। कहा--"इन बातों से अन्ध-विश्वास बढ़ता है।" मगर बाद में साथियों के कहने से वह मान गये। उनके पवित्र हाथों से छुआ हुआ गंगाजल भेजा गया और रोगी को नींद आने लगी। यह बापू का चमत्कार था या बीमार का अटूट विश्वास, इसका फैसला कौन करे ?

इसके बाद सन् १९३६ के अक्तूबर मास की २७ ता० को बापूजी एक बार और मेरे घर आये और वह उनका अन्तिम आगमन था। मेरी मां तब बीमार थीं। बापू भारतमाता का मंदिर खोलने बनारस जा रहे थे। मैंने उन्हें लिखा--"यदि आप दिल्ली होकर

वापस जायं तो बड़ा अच्छा हो। मां आपको देखना चाहती हैं।" वापसी डाक से उनकी स्वीकृति आगई और जब वह दिल्ली पहुंचे तो स्टेशन पर उतरकर बोले—"दिल्ली में मेरा कोई और काम तो था नहीं, तेरी मां को और बेगम अन्सारी को देखने आया हूं।" उसके बाद १९३८ में मेरी मां ही न रहीं और न रहा मेरा घर! तब उन्हें लाता कहां?

१९२४ के उपवास के बाद गांधीजी नवम्बर मास में दिल्ली से साबरमती आश्रम चले गये। उस वर्ष वह बेलगांव कांग्रेस के प्रधान चुने गये थे। उनके दिल्ली से जाने के कुछ ही दिन बाद अचानक मेरी पत्नी का देहान्त हो गया। इस दुर्घटना ने मुझे गांधीजी के और भी निकट पहुंचा दिया। मैं उनकी करुणा का पात्र बन गया। किन शब्दों में व्यक्त करूं मैं उनका प्रेम, जो वह मेरे प्रति रखते थे! बस इतना ही कह सकता हूं कि यदि उन्होंने मुझे अपनी शरण में न लिया होता तो आज न जाने मैं कहां धक्के खा रहा होता। मैंने कभी अपने को उनके निकट रहने के योग्य नहीं पाया। मेरे दिल में सदा एक संघर्ष चलता रहता था। दिल की चाहना तो यह थी कि सदा उनके निकट बना रहूं, मगर मन की दुर्बलताओं को देखकर मैं सदा उनसे दूर रहने की सोचता था। यही कारण है कि २४ वर्ष उनके संपर्क में रहकर भी मैं कुल मिलाकर २४ मास भी उनके साथ न रह पाया होऊंगा।

बापूजी को जब मेरी पत्नी की मृत्यु का समाचार मिला तो तुरंत ही उनका सान्त्वना का तार आया। फिर उनका पत्र आया, जिसमें उन्होंने लिखा था:

"तुम्हारे दुःख की खबर कल शाम मिली। आज तार दिया है। ईश्वर तुमको धीरज दे। जन्म-मृत्यु एक ही वस्तु है, यह बात यदि हम समझ लें तो मृत्यु से खेद क्यों करें? सच्चा मित्र कभी मरता नहीं है। अपनी धर्मपत्नी एक मित्र ही है। उनके गुण का हम अहर्निश स्मरण करते रहें तो मृत्यु को अवकाश ही नहीं है। एक-पत्नी-व्रत का पालन करने की दृढ़ता ईश्वर तुमको दे।

बम्बई का. कृ. १३, २५-११-२४ बापू के आशीर्वाद"

उनके हाथ का लिखा यह पहला पत्र मेरे पास आज भी मौजूद है। इसके बाद वह जब भी पत्र लिखते थे तो प्रायः यह वाक्य अवश्य होता था—'तुम शान्तचित्त होगे' ; 'तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।'

अपना दुःख भुलाने के लिए मैं दिसम्बर मास में बापूजी के पास बेलगांव चला गया। उन्होंने अपने पास ही मुझे ठहराया। आचार्य कृपलानी मेरी साथ वाली झोपड़ी में उतरे थे। उनको अपना कमोड स्वयं साफ करते देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। बाद में पता चला कि पैखाना साफ करना आश्रमवासियों के लिए साधारण बात है—आश्रम का वह एक नियम ही है।

१९२५ में बापूजी एकता सम्मेलन की बैठकों के लिए कई बार दिल्ली आए। अब वह लाला रघुबीरसिंह की कोठी पर काश्मीरी दरवाजे ठहरने लगे थे। उस वर्ष कांग्रेस-अधिवेशन कानपुर में था। गांधीजी ने वहां एक वर्ष तक सियासत से अलग रहने का निश्चय किया।

: ३ :

आश्रम-जीवन

आश्रम में मैं पहली बार दिसंम्बर १९२५ में गया। बापूजी का पत्र आता रहता था कि तुम जब चाहो यहां आ सकते हो और जितने दिन चाहो ठहर सकते हो। आश्रम उन दिनों साबरमती में था और आश्रम-वासियों की संख्या बहुत अधिक थी। बापूजी के साथ अनेक परिवार भिन्न-भिन्न मकानों में स्वतंत्ररूप से रहते थे। एक मकान में मगनलाल-भाई अपने कुटुम्ब के साथ, दूसरे में महादेवभाई, नारायणदासभाई इत्यादि। इसी प्रकार कोई बीस परिवार तो अलहदा-अलहदा और कोई सौ आश्रम-वासी छात्रावास की भिन्न-भिन्न कोठरियों में रहा करते थे। हर कोई अपने-अपने नियत कार्य में इतना व्यस्त रहता था कि बात करने को भी समय कठिनाई से मिलता था।

आश्रम बापू की एक प्रकार की प्रयोगशाला थी। देश के हर प्रांत से और विदेशों से भी आकर लोग वहां जमा होते थे और बापूजी के सत्य और अहिंसा के प्रयोग में हिस्सा लेते थे। बापूजी की जितनी भी प्रवृत्तियां थीं उन सबका लक्ष्य सत्य और अहिंसा की प्राप्ति था।

आश्रम की दिनचर्या सुबह चार बजे आरम्भ हो जाती थी। घंटे की टकोर सुनते ही सब लोग जाग पड़ते थे। रात ही को लेकर रखी हुई दातुन से मुंह साफ करके सवेरे ४-२० पर प्रार्थना में शरीक होना जरूरी था। बापूजी बीच में बैठते थे। एक ओर बहनें और बच्चे और दूसरी ओर तथा सामने भाई। आश्रम में भाई-बहन का ही रिश्ता प्रचलित था। सब टटार (सीधे) बैठते थे। यदि कोई ऊंघने लगता तो बापू कहते कि खड़े होकर प्रार्थना करो, आलस्य न दिखाओ। उस समय तक प्रार्थना में बौद्ध, मुस्लिम और पारसी धर्म संबंधी प्रार्थना के भाग शामिल नहीं किये गये थे। ये तो बहुत बाद में शामिल किये गये।

एक बार एक जापानी भाई आकर वर्धा आश्रम में दाखिल हुआ। वह प्रार्थना आरम्भ होने से पूर्व बापूजी को दण्डवत् प्रणाम करता और चमड़े से मढ़ी एक पंखी-सी को एक सोटे से बजाकर 'नम्यो हो रेंगे क्यों' इस वाक्य का तीन बार उच्चारण करता। प्रार्थना समाप्त होने पर इसी वाक्य को गाता-गाता वह गांवों की प्रदक्षिणा करने चला जाता। जब १९३९ का महायुद्ध शुरू हुआ तो उस जापानी भाई को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। उसके चले जाने पर बापूजी ने 'नम्यो' को दोनों समय की प्रार्थना का अंग ही बना लिया और दूसरे आश्रमवासी उसे पढ़ने लगे।

इसी प्रकार एक बार बहन रैहाना तैय्यबजी ने बड़े मधुर कंठ से कुरान शरीफ की आयत 'अऊजुबिल्ला' पढ़कर सुनाई और वह आयत प्रार्थना में शामिल कर ली गई।

१९४२ में आगाखां महल में जब डा० गिल्डर बापूजी के साथ थे तो उन्होंने प्रार्थना के समय पारसी धर्म पुस्तक में से 'मजदा अन मोइ-बहिश्ता' यह गाथा पढ़नी शुरू की। तब से इसे भी रोज की प्रार्थना का अंग बना लिया गया।

सिक्खों ने भी बहुत कोशिश की कि ग्रंथसाहब में से कोई शब्द रोज की प्रार्थना में जोड़ लिया जाय। इस विषय के कितने ही पत्र बापूजी के पास आते रहते थे।

आखिरी दिनों में तो एक भाई आकर बापूजी को ग्रंथसाहब में से कुछ पढ़कर सुनाया भी करते थे और उनका आग्रह था कि उसे प्रार्थना का भाग बना लिया जाय। बापूजी अभी यह निश्चय न कर पाये थे कि किस को प्रार्थना में शामिल करें कि इसी बीच वह चल बसे।

सुबह की प्रार्थना के बाद आश्रम का काम शुरू हो जाता था। ६ और ७ के बीच नाश्ता होता था, ११ बजे भोजन, शाम के ५ बजे दूसरा भोजन, ७ बजे शाम को प्रार्थना और रात ९ बजे शयन।

आश्रम की अनेक प्रवृत्तियां थीं, जिनमें आश्रमवासी लगे रहते थे। नौकर रखे जाने का रिवाज नहीं था। सब काम आश्रमवासी अपने हाथों करते थे। आश्रम की सफाई, पैखाना साफ करना, कपड़े धोना, खाना पकाना, बरतन साफ करना, साग काटना यह सब काम आश्रम के लोग स्वयं करते थे। चरखा चलाना सबके लिए लाजमी था। शाम को प्रार्थना के बाद हाजिरी ली जाती थी, जिसमें दिन भर में काते सूत के तारों की गिनती लिखानी होती थी। न कातने का कारण बताना होता था। सूत कातने के प्रयोग तरह-तरह के चरखों और तकलों पर होते रहते थे। कताई की गति कैसे बढ़े, सूत कम-से-कम टूटे, वह बारीक हो, मजबूत हो, समान हो ये सब बातें बताई जाती थीं। इसके संबंध में कपास ओटना, रुई साफ करना, धुनना, पूनी बनाना आदि भी सिखाया जाता था। तरह-तरह की धुनकियों के प्रयोग होते रहते थे। कपड़ा बुनना, बढ़ई का काम, लोहार का काम, चमार का काम, जूते बनाना, यह सब आश्रम में सिखाया जाता था।

चमड़ा मुर्दार जानवर का बरता जाता था। आश्रम की अपनी गोशाला थी। खेती भी होती थी। बंदर बहुत थे, जो उसको नुकसान पहुंचाते थे। आश्रम के पपीते बहुत मशहूर थे। भिन्न-भिन्न प्रयोगों के लिए एक बड़ा कारखाना था। बच्चों के लिए एक पाठशाला थी और

महिलाओं के लिए भी शिक्षा का प्रबंध था। बापूजी स्वयं बहनों को पढ़ाया करते थे। गायन सिखाने के लिए एक पंडितजी थे, जो बड़े मधुर कंठ से तंबूरे पर प्रार्थना और भजन गाया करते थे।

आश्रम के नियम बने हुए थे। प्रबंध के लिए एक छोटी कमेटी थी। हर एक को मताधिकार था। स्त्रियों को भी बराबरी के अधिकार थे। आश्रम में जब कभी कोई परिवर्तन होता था तो सबकी सलाह से।

आश्रमवासियों के लिए रसोई संयुक्त थी, किन्तु जो परिवार रहते थे वे अपना-अपना भोजन अलग पकाते थे। बापूजी का भी रसोड़ा अलग था। साग काटने और इसी तरह घर के दूसरे कामों में बापूजी बा को मदद दिया करते थे, लेकिन उन्हें यह अच्छा नहीं लगता था कि परिवारों और अन्य आश्रमवासियों में कुछ भेद रहे। इसलिए एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि सबके लिए संयुक्त रसोड़ा हो और एक ही प्रकार का भोजन बने। इस पर बड़ी बहस छिड़ी। बहुत विरोध भी हुआ, किंतु अंत में सबकी सम्मति से यह परिवर्तन कर ही दिया गया।

भोजन बहुत सादा होता था। बिना मिर्च-मसाले का उबला हुआ साग, कच्चा साग, रोटी, डबल रोटी (जो आश्रम में ही तैयार की जाती थी), दाल, गाय का दूध, गुड़ और जरूरतमंदों के लिए फल। बहुत-सी सब्जी आश्रम में ही पैदा कर ली जाती थी। खाने के समय की घंटी बजती थी। १५ मिनट पहले छुट्टी हो जाती थी। ठीक ११ बजे खाना शुरू हो जाता था, जो देर से आते थे उन्हें दूसरी पंक्ति के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। भोजन मंत्रोच्चारण के बाद आरम्भ किया जाता था। उस समय दरवाजा बंद रहता था और यदि बापूजी को आने में देर हो जाती तो उन्हें बाहर ही खड़ा रहना पड़ता था। बापू सबके साथ बैठकर भोजन किया करते थे।

खाने के प्रयोग तो चलते ही रहते थे। हर कोई किसी-न-किसी व्रत से बंधा रहता था। कोई दूध नहीं लेता, कोई गाय का दूध लेता है, कोई उबला खाता है, कोई कच्चा खाता है, कोई रोटी-दूध पर है तो कोई

फल और दूध पर। सब प्रयोग बापूजी की देख-रेख में होते थे। वह स्वयं भी कुछ कम प्रयोग नहीं करते थे। एक बार आश्रम गया तो देखा बहुत से आश्रमवासी कच्ची चीजों का ही प्रयोग कर रहे हैं। कच्चे गेहूं रात को भिगो दिये जाते थे और जब अंकुर फूट निकलते थे तो वैसे ही खा लिये जाते थे। इसी तरह कच्चा साग, कच्चा दूध, कच्ची मूंगफली और कच्चेफल भी खाये जाते थे। कोई वस्तु आगपर पकाई नहीं जाती थी। साथ-ही साथ प्राकृतिक चिकित्सा भी चलती रहती थी। बापू के पास जो आते थे उनमें से अधिकतर किसी-न-किसी शारीरिक या मानसिक विकार से पीड़ित होते थे। बापूजी के साथियों को कोई तो शिवजी के बराती कहते और कोई अजायबघर के नमूने। मतलब यह कि भांति-भांति के प्राणी बापू के पास जमा रहते। यही उनकी प्रयोगशाला थी।

शाम को प्रार्थना के बाद उन दिनों भी बापू प्रवचन किया करते थे। अधिकतः वह प्रश्नों के उत्तर देते और कभी-कभी तुलसीकृत रामायण पढ़कर सुनाया करते थे, जो उन्हें बहुत प्रिय थी।

उन दिनों साबरमती आश्रम की एक शाखा वर्धा में थी। श्री विनोबा भावे और कुछ अन्य कार्यकर्ता वहां रहा करते थे। वर्ष में एक बार बापूजी वहां जाते थे। वहां के नियम भी साबरमती आश्रम-जैसे ही थे। अब वहां कन्याशाला है।

बापूजी साबरमती आश्रम में ११ मार्च, १९३० तक रहे। १२ मार्च को उन्होंने दांडी-यात्रा शुरू की। वह वहां से स्वतंत्रता प्राप्ति का प्रण लेकर निकले थे। यह प्रण तो उन्होंने पूरा कर दिया, किंतु उसके बाद वह आश्रम न लौट सके। अब वहां हरिजन आश्रम है।

१९३३ में जेल से आकर बापूजी वर्धा आश्रम में रहने लगे थे। उसके कुछ समय बाद मगनवाड़ी में रहने लगे। मगनवाड़ी जमनालालजी के वर्धा वाले बाग को कहते हैं। मगनलाल गांधी बापूजी के भतीजे थे। १९२९ में उनकी मृत्यु हो गई। वह बापूजी के बहुत प्रिय थे और उनके दाहिने हाथ माने जाते थे। उन्हींकी याद में वहां खादी का संग्रहालय कायम किया गया था। आजकल वहां ग्राम-उद्योग-संघ का दफ्तर भी है।

बाद में मगनवाड़ी से बापूजी सेगांव (सेवाग्राम) चले गए। यह छोटासा देहात वर्धा से पांच मील की दूरी पर है। वहां वह अपने साथ किसीको नहीं ले गए, यहां तक कि पूज्य बा और महादेवभाई को भी नहीं। वहां जाकर उन्होंने एक पीपल के वृक्ष के नीचे डेरा डाल दिया। महादेवभाई रोज जाते और शाम को मगनवाड़ी लौट आते।

धीरे-धीरे सेवाग्राम आश्रम बढ़ना शुरू हुआ। पहले महादेवभाई पहुंचे, फिर बा गईं, प्यारेलाल गए और दूसरे साथी भी पहुंचे। मकानों की वृद्धि होने लगी। बापू की कुटिया बनी, बा के लिए स्थान बना, महादेव-भाई के लिए मकान बना और शेष लोगों के लिए एक बड़ा हाल। फिर तो वहां गोशाला बन गई, तालीमी संघ कायम हुआ, खादी विद्यालय का निर्माण हुआ, कस्तूर बा ट्रस्ट की ओर से अस्पताल खुला। बढ़ते-बढ़ते वह साबरमती-आश्रम से भी बढ़ गया। गांधीजी जहां जाते थे वहीं जंगल में मंगल हो जाता था।

समय-समय पर मैं इन सभी स्थानों में गांधीजी के साथ रहा हूं और आज उन दिनों की घटनाएं मेरे स्मृति-पट पर घूम रही हैं।

पहली बार जब मैं साबरमती आश्रम गया तो महादेवभाई के घर ठहरा। उन दिनों बापू सात दिन का उपवास कर के चुके थे। एक भाई आकर उन्हें वीणा सुनाया करते थे। बापू के साथ रहकर मैंने अनेक मधुर कंठ और मधुर वाद्य सुने हैं, जो अब शायद ही कभी सुनने को मिलें। बापू स्वयं तो कभी नहीं गाते थे, मगर उनको संगीत का पूरा ज्ञान था। वह स्वर की शुद्धता और मधुरता दोनों पर ध्यान रखते थे। साथ ही अन्तर की भावना पर भी, जो उनके लिए मुख्य वस्तु थी। इसीलिए हर-कोई उनकी प्रार्थना में आकर भजन नहीं गा सकता था। जब तक उनका कोई साथी किसी नये गाने वाले का पूरा परिचय न करादे और यह न बतादे कि उसका कंठ कैसा है तब तक वह उसे गाने की आज्ञा नहीं देते थे। पेशेवर गाने वालों को तो वह प्रार्थना में गाने ही नहीं देते थे।

दूसरी बार जब मैं साबरमती गया तो बापू के साथ 'हृदय-कुंज' में ही ठहरा। पूज्य बा का रसोड़ा अलग था। सुबह की प्रार्थना के बाद

बापू साग कटवाते थे। मैं भी उनका साथ देता। कुछ बातें भी होती रहतीं। उन दिनों मेरा मन बहुत अशांत रहता था और स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था। बापू ने समय-समय पर भोजन और प्राकृतिक चिकित्सा के कितने ही प्रयोग मुझसे करवाये हैं। जब कभी कोई प्राकृतिक चिकित्सक उनसे मिलने आता और मैं उनके पास होता तो वह मुझे उस चिकित्सक को दिखाये बिना न रहते। वह कई बार मुझे अपने साथ आश्रम में ले गए। दुर्भाग्यवश मैं वहां जाकर बीमार हो जाता, जो बापू को बहुत अखरता था। वह मेरे स्वास्थ्य का बराबर ध्यान रखते थे। एकबार मुझे बुखार आ गया था। बापू की देख-रेख में चिकित्सा और पथ्य चल रहा था। बीमारी की खबर सुनकर मां भी वहां आ पहुंची। वह थीं कट्टर सनातनी, छूआछूत को मानने वाली। बापू ने पूछा कि आश्रमका बना भोजन करोगी या नहीं? मां ने इन्कार कर दिया। तब काफी विनोद रहा, मगर मां ने वहां का भोजन नहीं किया।

उन दिनों युक्तप्रांत के एक ताल्लुकेदार आश्रम में ठहरे हुए थे। जिन्हें खुजली की बीमारी थी। बापू ने उनका इलाज शुरू किया और उन्हें तम्बाकू न पीने की हिदायत की। मुझे उनकी देख-रेख करने को कहा गया। बापू सबका ध्यान रखते थे और कौन क्या करता है इसकी सूचना उनके पास पहुंचे बिना न रहती थी। मुझे क्या पता कि बापू ने उन्हें तम्बाकू पीने को मना किया है। बापू ने मुझसे उनका हाल पूछा। मैंने सब बता दिया और यह भी कह दिया कि वह सिगरेट पीते हैं। शाम को बापू उन्हें देखने गए तो उनसे सिगरेट पीने की बात पूछी। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। उस वक्त तो बापू कुछ नहीं बोले मगर रात को मुझे बुला कर कहा—"उसने मुझसे झूठ बोला है। इसका बड़ा रंज हुआ है। मैं इस असत्यको कैसे सहन कर सकता हूं? जो आदमी मुझसे झूठ बोलता है उसकी तरफ से मैं निगाह हटा लेता हूं। तुम सुबह ही उसके पास जाना और सब बातें उसे समझाना।"

उस रात बापू अच्छी तरह सो नहीं सके। वेदना से उनका चेहरा खिन्न था। उनको बड़ा आघात पहुंचा था। सुबह वह भाई आया

और उसने बापू से क्षमा मांगी और अपनी भूल स्वीकार की, तब कहीं बापू को शांति मिली।

सत्य के लिए बापू को कितनी लगन थी, उसका साक्षात् अनुभव मैंने उस दिन किया। मैं जब कभी उनके हस्ताक्षर करवाता और कुछ शब्द लिखने को कहता तो वह यही लिखते, "कैसा भी हो, सत्य को मत छोड़ो।" या "सत्य और अहिंसा के संपूर्ण पालन की भरसक कोशिश करो।" आत्मकथा की पुस्तक पर उन्होंने मुझे लिखकर दिया था, "जो सत्य और अहिंसा का उपासक बनना चाहता है उसे अभय और दृढ़ता का सबक अच्छी तरह सीख लेना चाहिए।"

इसी प्रकार एक साथी की भूल पर प्रवचन करते हुए एक बार बापू ने कहा था—

"आज मेरे एक परम प्रिय साथी से भारी भूल हो गई है, जिसको समझकर हम सबको पूरी तरह सावधान रहना चाहिए। प्रत्येक प्राणी विकारों से भरा पड़ा है। दोष हमें चारों ओर से घेरे खड़े हैं। वे हम पर कब आक्रमण कर देंगे, यह कौन कह सकता है? मनुष्य चाहे जितनी ही सात्त्विक प्रकृति का हो, जन्म-जन्मान्तर के पापों को धोने का वह चाहे कितना ही प्रयत्न कर रहा हो, परन्तु दैवगति ऐसी है कि क्षण-भर में सब कुछ समाप्त हो जाता है। कल जिस पर हम आंख भी नहीं उठा सकते थे, जिस पर शुबहा भी नहीं कर सकते थे कि वह कभी पाप-कर्म कर सकता है, उस तक का एक दिन पतन होना संभव है। हमें अपनी अपूर्णता का विचार करना चाहिए और प्रतिक्षण सावधान रहना चाहिए। न मालूम हमसे कब और क्या भूल हो जाय! पाप करने का अर्थ यह नहीं है कि जब वह आचरण में आजाय तब ही उसकी गिनती पाप में हुई। पाप तो जब हमारी दृष्टि में आगया, विचार में आ गया, तो हमसे वह हो गया। कौन ऐसा है जो कह सकता है कि मैंने मनसा, वाचा, कर्मणा, पाप नहीं किया? सुबह से शाम तक मानस-पाप न जाने कितने होते होंगे। परन्तु जिसे अपनी निर्बलता का ज्ञान है और जिससे बिना इच्छा किये ही अनायास पाप हो उठते हैं, वह तो ईश्वर के सामने रोयेगा, उसे पुकारेगा और उससे

आत्मबल-प्राप्ति की याचना करेगा। यदि उसका हृदय कपटरहित, दम्भरहित है तो ईश्वर उसकी पुकार सुनेगा ही और उसकी रक्षा करेगा। ईश्वर तो सबके हृदय की जानता है। उसको कौन धोखा दे सकता है ? उसने तो कहा है, "जो अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मुझे भजता है वह साधु ही है।" भूल में किये गए अपराध अवश्य क्षमा होंगे, परन्तु जान-बूझकर यदि कोई कुए में गिरे तो कुशल कहां ! उसके लिए क्षमा नहीं है। पाप छोटा हो या बड़ा, ईश्वर के यहां तो दंड समान ही मिलेगा। क्या सौ रुपये की चोरी करने वाला छूट जायगा और जिसने बड़ा खजाना लूटा है वह ज्यादा सजा पायगा ? ईश्वर के यहां ऐसा नहीं है।

"किसी भी पापी को देखकर हम उससे घृणा न करें। यदि ऐसा करेंगे तो उसका तो कल्याण ही होगा, परन्तु हमारी क्या दशा होगी ? हम घृणा करनेवाले कौन ? क्या हम पापमुक्त हैं ? हमें तो उसे देखकर यह विचार करना चाहिए कि जब इस व्यक्ति से भी पाप हो सकता है तो हमारी क्या गिनती ! और यह सोचकर सदा सावधान रहना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति कहे कि मैं वैरागी हूं तो मैं दूर से ही उसे नमस्कार करूंगा, क्योंकि सूरज यह थोड़े ही कहता है कि मैं गर्मी दे रहा हूं। उसका तो हम अपने-आप अनुभव कर लेते हैं। वैरागी तो वह है जिसका राग-द्वेष चला गया है और ऐसा तो परमात्मा ही है। हमारी तो पग-पग पर परीक्षा हो रही है। पग-पग पर पतन का भय है।

"जो आश्रम में आगए हैं, उनको अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। सत्याग्रह-आश्रम में रहने का अर्थ है सत्य के पालन का व्रत लेना, अपने अन्तःकरण को शुद्ध करना। जो समझे कि मेरे लिए यह साधना असम्भव है वह चला जाय, लेकिन दम्भ से यहां का वातावरण दूषित न करे। आश्रमवासियों की आत्मिक शक्ति पर भरोसा करके ही स्वराज्य-युद्ध हो सकता है। आजतक असफल रहने का कारण यही है कि जो आदर्श है उसका पालन नहीं होता। इन सब बातों को जानते हुए भी मैं सब कुछ छोड़कर भाग नहीं जाता, क्योंकि मेरा जीवन ही इस प्रकार का हो गया है। इस वायुमंडल में रहते हुए भी मैं शांति का संग्रह करना चाहता हूं।"

पर-निन्दा पर प्रवचन करते हुए एक बार बापूजी ने कहा था—"पर-निन्दा करना एक बहुत बड़ा दोष है, जो स्त्री-जाति में विशेषकर और सामान्यतः पुरुषों में भी पाया जाता है। किसी भी व्यक्ति का थोड़ा दोष देखकर बिना उसकी सत्यता का निर्णय किये ही बहुत से लोग उसे चारों ओर फैला देते हैं। वे दूसरे के दोष बखान करने में आनन्द अनुभव करते हैं और किसी की निन्दा बड़े चाव से सुनते हैं। यदि मनुष्य अपनी ओर देखे तो वह अपने-आपको विकारों से पूर्ण पायगा। कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। किसी की बुराई सुनकर यदि हम अपने को उसके स्थान में रखकर देखें तो हम अपने को कुछ कम विकारयुक्त न पायंगे। दूसरे के अवगुणों से हमें शिक्षा लेनी चाहिए और दोषों को छोड़ने का सतत प्रयत्न करना चाहिए। ईसा ने कहा है—'मनुष्य अपनी आंख का शहतीर नहीं देखता, उसे दूसरे की आंख का तिनका भी दीख जाता है।' अर्थात् मनुष्य को दूसरों के दोष खूब दीखते हैं। आज संसार में कौन व्यक्ति है जो अपने हृदय पर हाथ रखकर कह सके कि वह कभी विकार-वश नहीं हुआ? यदि कोई ऐसा पूर्ण व्यक्ति मिल जाय, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, बूढ़ा हो या बच्चा, तो वह वन्दनीय है। जो सदा सत् की खोज में रहता है, वह प्रतिक्षण अपने दोषों का अनुभव करता है, उसे दूसरों के दोष देखने और पर-निन्दा सुनने के लिए समय ही कहां? उसको तो हर क्षण का हिसाब देना है। सत् ही ईश्वर है, सत् ही आत्मा है और वही हमारा उच्चतम लक्ष्य है। उसी की खोज में लगे रहें तो हमारा कल्याण होगा।"

एक दिन सवेरे मैं और प्रभुदास गांधी बापूजी से एक विषय पर सलाह करने गए। उन्होंने मित्र-धर्म समझाते हुए कहा—"देखो, यह बत्ती जो जल रही है, मित्र है, क्योंकि यह प्रकाश दे रही है। यदि अभी यहां सांप निकल आए तो यही बत्ती मेरे शत्रु के समान हो जायगी, क्योंकि मैं इस बत्ती और मेज से घिरा बैठा हूं और यहां से आसानी से न हट सकूंगा। मित्रता को इसी प्रकार से समझो। जब तक वह एक-दूसरे के लिए सहायकरूप है तब तक मित्रता है और जब वह बाधकरूप बन जाती है तो मित्रता न रहकर शत्रुता का रूप धारण कर लेती है।"

मृत्यु और जीवन उनके लिए समान थे। एक बार साबरमती आश्रम में चेचक का जोर हो गया। पंडित खरे का एक बच्चा उसी में चला गया। उसी समय आश्रम में एक विवाह भी हो रहा था, बच्चे को श्मशान में पहुंचाकर वह तुरन्त विवाह की वेदी पर आ बैठे।

विवाह-पद्धति में उन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया था। आध घंटे में ही विवाह की सब विधि समाप्त हो जाती थी और सारे विवाह का खर्च पांच रुपया भी न होता था। वर-वधू बापू के आशीर्वाद प्राप्त करके सुखमय जीवन के स्वप्न देखने लगते थे। मगर इन दिनों बापूजी ने यह व्रत-सा ले लिया था कि जब तक एक पक्ष हरिजन न हो तब तक वह वर-वधू को आशीर्वाद न देंगे।

उन दिनों गीता-पारायण शुक्रवार से आरम्भ होकर १४ दिन में पूरा होता था। बाद में वही सात दिनों में पूरा किया जाने लगा। शुरू करने के लिए बापूजी ने शुक्रवार का दिन क्यों रखा था यह प्रश्न मैंने कभी उनसे नहीं पूछा। आश्रम में छुट्टी भी शुक्रवार को ही होती थी। क्या वह मुसलमानों का पवित्र दिन है, इसलिए? या ईसा को उस दिन फांसी दी गई, इसलिए? नहीं, शायद उन्हें पता था कि शुक्रवार को ही वह इस संसार से विदा होंगे और यह दिन पुण्य-दिवस बनेगा।

शुद्ध उच्चारण पर वह बड़ा ध्यान देते थे। एक बार अलमोड़े की यात्रा में सुबह की प्रार्थना में चौथा अध्याय पढ़ा जानेवाला था। संयोग-वश उस दिन प्रार्थना जाननेवाले उनके साथियों में से मेरे सिवा और कोई वहां मौजूद न था, इसलिए पाठ मुझे करना था। मैं अपने अभिमान में सोचे बैठा था कि पाठ ठीक-ठीक बोलूंगा, मगर जब बोलना शुरू किया तो सब पोल खुल गई। ४२ श्लोकों के अध्याय में बापू ने दसियों जगह टोका कि गलत बोल रहा हूं। तब मुझे पता लगा कि मेरा उच्चारण कितना खराब था! उसे सुधारने के लिए मुझे सारी गीता भुलानी पड़ी और फिर से हरिःओऽम् करना पड़ा, किन्तु बापू की परीक्षा में उत्तीर्ण मैं कभी न हो सका। उन्होंने उत्तर भारत के पंडितों को प्रमाण-पत्र दे दिया था कि इनके उच्चारण शुद्ध नहीं होते। यही कारण है कि मुझे इसका फल भोगना पड़ा।

आश्रमवासियों को समझाते हुए उन्होंने एक वार कहा था—"कहीं भी जाकर तुम्हें भाररूप न होना चाहिए। आश्रमवासी फूल की तरह रहें, जो भार-रहित होकर भी अपनी सुगंध छोड़ जाता है। अर्थात् आश्रमवासी अपना काम तो स्वयं करे ही, दूसरों के कामों में भी मदद दे और अपनी छाप छोड़ जाय।"

अतिथि वनकर अपने नियमों का पालन कैसे करना चाहिए, इस संबंध में उन्होंने एक वार लिखा था—"कहीं भी खाने के लिए जायें; परन्तु अपने नियम को न छोड़ें और मित्र को कष्ट भी न दें। इसलिए मित्र के यहां जाकर जो हमारे लिए खाद्य वस्तु हो, उसको खा लें। कम-से-कम भात या रोटी तो रहती है। वस इसी को नमक के साथ खा लें और मित्र का अनुग्रह मानें।"

उन दिनों वर्धा आश्रम में यह नियम था कि वहां जो भोजन करे वह चक्की चलाए, आटा पीसे और अनाज साफ करे। वापूजी स्वयं सुवह की प्रार्थना के वाद चक्की पर आटा पीसा करते थे और भोजन करने के वाद अनाज साफ किया करते थे।

आश्रमवासी अपना रोजनामचा रखते थे। सवके लिए यह एक अनिवार्य नियम था। वापू ने मुझसे भी रोजनामचा लिखने को कहा। १९२९ से मैंने उसे रखना शुरू किया, जिसे वीच-वीच में वह देख लिया करते थे। मैं कागज की एक ओर लिखता था। इस पर उन्होंने नोट लिखा—"दोनों वगल (तरफ) लिखना चाहिए। आधा कागज खामख्वाह व्यर्थ जाता है।"

: ४ :

स्वतंत्रता-संग्राम

कानपुर कांग्रेस के वाद गांधीजी अपना अधिक समय रचनात्मक कार्य में देने लगे। चर्खा संघ के लिये कोष जमा करने को उन्होंने देश भ्रमण शुरू किया। १९२७ में वह प्रायः यात्रा करते रहे। नवम्बर मास में जव

वह मलाबार का दौरा कर रहे थे तो लार्ड इरविन ने उन्हें देहली बुलाया और साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। इस बार बापूजी श्री विट्ठलभाई पटेल की कोठी नं० २० अकबर रोड, नई दिल्ली में ठहरे थे। वायसराय को श्री विट्ठलभाई ने अपनी कोठी पर चाय पीने के निमित्त बुलाकर गांधीजी से उनकी बातें करवाई थीं।

१९२८ में देश भर में साइमन कमीशन के बहिष्कार का आंदोलन चलता रहा और साथ ही बारदोली सत्याग्रह छिड़ गया। फरवरी, मार्च और मई मास में दिल्ली में सर्वदल सम्मेलन की बैठकें हुई जिनमें गांधीजी को शरीक होना पड़ा। गांधीजी इस वर्ष भी यात्रा करते रहे। दिल्ली में वह सेठ लक्ष्मीनारायण गाडोदिया के घर कूचा नटवां में ठहरते थे।

१९२९ के मार्च में जब वह बरमा जा रहे थे तो उन्होंने कलकत्ते में विदेशी कपड़े की होली जलाई थी और सरकार ने उनपर मुकदमा चलाकर एक रुपया जुरमाना किया था। जुलाई और नवम्बर मास में वह कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक में शरीक होने दिल्ली आये और फिर २३ दिसम्बर को लार्ड इरविन ने उन्हें मुलाकात के लिये यहां बुलाया और गोलमेज कांफ्रेंस की बात की। इस बार गांधीजी नई दिल्ली में औरंगजेब रोड पर ठहरे थे जहां आजकल सरदार पटेल रहते हैं। दिल्ली से वह सीधे कांग्रेस अधिवेशन में शरीक होने लाहौर चले गये। मैं भी उनके साथ था। पंडित जवाहरलालजी इस वर्ष कांग्रेस के प्रधान चुने गये थे। लाहौर में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और ३१ दिसम्बर की रात के १२ बजे रावी दरिया के किनारे पंडितजी ने तिरंगा झंडा लहरा कर स्वतंत्रता की घोषणा की।

गांधीजी की चरखा संघ कोष के लिये यात्रा चालू थी। गरमी के दिनों में उन्होंने अल्मोड़ा की यात्रा की। उन दिनों में और देवदासजी पहले से ही वहां ठहरे हुए थे। कुछ दिनों के लिए बापू कौसानी नामक स्थान में जाकर रहे, जो एक बहुत ही रमणीक स्थान है। वहां से हिमालय की बर्फ से ढकी चोटियों का दृश्य देखने योग्य है। चांदनी रात में बरामदे में लेटे हुए बापूजी कितनी ही देर तक उन हिमाच्छादित सुनहरी चोटियों

को देखते रहते थे और प्रकृति की सराहना करते रहते थे। इसी स्थान पर रहकर उन्होंने २४—६—२९ के दिन 'अनासक्तियोग' की भूमिका लिखी थी।

१९३० का आरम्भ था। बापूजी लाहौर-कांग्रेस से लौटकर साबरमती आश्रम में आ गये थे। वापसी पर वह दिल्ली में दिन भर के लिए रामपुरा देहात के पास सेठ गाडोदिया की गोशाला में ठहरे थे। सत्याग्रह क्या शक्ल अख्तियार करेगा, इस पर विचार हो रहा था। आखिर नमक-कानून तोड़ने का निश्चय हुआ, जिसके लिए भारी तैयारियां शुरू हो गईं। उन दिनों मुझे थोड़ी हरारत रहा करती थी। बापू ने मुझे वर्धा से साबरमती बुला लिया था और हवा बदलने के लिए बीजापुर, जो वहां से चालीस मील है, भेज दिया था। इसलिए मैं डांडी-कूच में शरीक न हो सका। मेरी मां को भय था कि मैं जेल चला जाऊंगा। वह मुझे लेने बीजापुर चली आईं। मामला बापू के सामने आया और निश्चय हुआ कि मैं स्वयं जेल नहीं जाऊंगा, पुलिस पकड़ कर ले जाय तो लाचारी है। मां को समझा-बुझाकर बड़ी कठिनाई से बापूजी ने वापस घर भेजा।

१२ मार्च आई। वह कूच का दिन था। मैं अपने उत्साह को रोक न सका। बापूजी अपनी उनासी साथियों की टुकड़ी लेकर साबरमती से कूच करके यात्रा के पहले पड़ाव पर टिके हुए थे। मैं उन्हें देखने वहां पहुंच गया। वह कुछ न बोले। मेरी हिम्मत बढ़ी और मैं दूसरे दिन भी उन्हें देखने चला गया।

तब उन्होंने मुझे बुलाकर इतना डांटा कि उसे मैं भूल नहीं सकता। मैं उसी समय वहां से भागा और बीजापुर आकर ही टिका। मेरे वहां से आने पर बापूजी ने एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने लिखा था—

"तुमको सख्त शब्द कहते हुए मुझे दुःख हुआ, परन्तु अनिवार्य था। तुम्हारे हृदय-दौर्बल्य को मैं निकालना चाहता हूं। तुम्हारी शक्ति का पूरा उपयोग तबतक नहीं हो सकता जबतक तुम्हारा हृदय दृढ़ नहीं होगा। हृदय की कोमलता आवश्यक है। सच्ची कोमलता के लिए दृढ़ता अत्यावश्यक है। उससे कौटुम्बिक संबंध निर्मल बनता है और मोह का नाश होता है। मुझको मिलने का लोभ ही छोड़ देना चाहिए। मैं जो कुछ

211

दे सकता था तुमको दे चुका हूं। समय आने पर तुम्हें भी जेल में जाना होगा। अब तो वहां का काम ही तुम्हारी जेल है। इसलिए किसी आवश्यक कारण बिना बीजापुर मत छोड़ो। शरीर को अच्छा बनाओ और जो मदद दे सकते हो देते रहो।"

छः अप्रैल को बापू ने डांडी नामक स्थान पर नमक-कानून तोड़ा। सारे देश में एक लहर-सी दौड़ गई थी। स्त्रियां, जो कभी परदे से बाहर न निकलती थीं, इस आंदोलन में सबसे आगे थीं। चारों ओर गिरफ्तारियों का बाजार गर्म था। बीजापुर में बैठा-बैठा मैं सब समाचार पढ़ा करता और दिल मसोस कर रह जाता। आखिर १३ अप्रैल को प्रेम से भरा बापू का एक और पत्र मिला जिसमें लिखा था—"बीजापुर में अगर कुछ काम नहीं है, तो यहां आजाओ। यहां की आबोहवा बहुत अच्छी है। मकान समुद्र के सामने ही है। इसलिए दिन-रात ठंडी हवा रहती है। नवसारी स्टेशन से १० मील दूर डांडी मुकाम है। अगर मैं पकड़ लिया जाऊं और यहां से छावनी उठा लूं तो भी तुमको रहने में कोई मुसीबत नहीं होगी।"

मेरे हर्ष का पार न रहा। मैं और कृष्णदास गांधी पहली गाड़ी से रवाना हो गये और दूसरे दिन बापू के पास जा पहुंचे। बापू काम में खूब व्यस्त थे। शाम को मुझे और कृष्णदास को लेकर वह समुद्र के किनारे घूमने निकले। मुझसे बोले—"तुम कौन-सा काम पसन्द करते हो, लड़ाई में शरीक होना या खादी-उत्पत्ति का काम करना?" मैंने लड़ाई में शरीक होना पसंद किया और कृष्णदास ने खादी का काम। बापूजी के आशीर्वाद लेकर और समुद्र के किनारे से थोड़ा नमक उठाकर मैं दूसरे दिन दिल्ली के लिए रवाना हुआ और सत्याग्रह में शरीक हो गया। वहां का नमक आज भी मेरे पास मौजूद है। बापूजी ५ मई, १९३० को कराड़ी गांव में गिरफ्तार हुए और मैं चार महीने बाद १७ सितम्बर को दिल्ली में।

सविनय अवज्ञा किसे कहते हैं और कौन कर सकता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए एक बार बापूजी ने कहा था—"जो सब नियमों का प्रेम से पालन करता है, वह, यदि कोई कायदा अनुचित दिखाई दे, तो उसका विनयपूर्वक विरोध कर सकता है। परन्तु विरोध करते हुए भी उसको

मन, वचन और शरीर से अहिंसा का पालन करना होगा। चाहे उसपर कितने ही संकट आयें और चाहे उसका कितना ही अपमान हो, वह क्रोध नहीं करेगा, बल्कि शांति से सब कुछ सहन करेगा। इसकी मिसाल प्रह्लाद हैं। उसने अपने पिता की सब आज्ञाओं का पालन किया, परन्तु उससे जब विष्णु का नाम लेने को मना किया गया तब उसने विनय से अपने पिता से कहा कि मैं ऐसा नहीं कर सकता। जो आपका और सब संसार का पिता है, उसका नाम मैं कैसे न लूं? इस अवज्ञा के लिए उसने गाली खाई, मार खाई, तरह-तरह के कष्ट सहे, परन्तु सब कुछ शांति से सहन कर लिया और पिता पर कभी क्रोध नहीं किया। यह सविनय अवज्ञा थी।"

२६ जनवरी, १९३१ को यरवदा जेल से रिहा होकर बापूजी बम्बई गये और फिर वहां से प्रयाग। मैं भी उनसे मिलने प्रयाग गया। वह आनन्द-भवन में ठहरे थे। पं० मोतीलालजी तब सख्त बीमार थे। छः फरवरी को जब मैं इलाहाबाद से लौटकर दिल्ली आ रहा था तो रेल में ही पंडितजी की मृत्यु का दुःखद समाचार सुना।

१७ फरवरी को बापूजी इलाहाबाद से दिल्ली आये और डा० अन्सारी की कोठी पर ठहरे। उन दिनों लार्ड इर्विन से समझौते की बातें चल रही थीं। कांग्रेस कार्यसमिति का जलसा बुलाया गया था और हर रोज उसकी बैठकें हो रही थीं। वह वाइसराय से मिलकर आते और समिति को सारी बातें बताते। मैं और महादेवभाई अन्दर के कमरे में किवाड़ के पीछे बैठकर सब कार्रवाई सुना करते थे। मेरे भाई उन दिनों एसोशियेटेड प्रेस ऑव इंडिया में काम करते थे। किसी ने नेहरूजी से जाकर कह दिया कि ब्रजकृष्ण यहां की सब बातें अपने भाई को बता देता है। मैं और महादेवभाई किवाड़ के पीछे बैठे समिति की बातें सुन ही रहे थे कि एकाएक पंडितजी आ खड़े हुए और उन्होंने बड़े जोर से मेरा नाम लेकर पुकारा। बापूजी बाहर बरामदे में बैठे थे। न मालूम कैसे उन्होंने सारी परिस्थिति को भांप लिया। इधर पंडितजी के मुंह से 'ब्रजकृष्ण' नाम निकला और उधर बापू की आवाज आई, "वह मेरा आदमी है!" पंडितजी वापस लौट गये। उस समय तक मेरा पंडितजी से कोई विशेष परिचय

नहीं था। बापू ने मेरी लाज बचाली। उनके उस दिन के आत्मीयता भरे शब्द आज भी मेरे कानों में गूंजा करते हैं। इस घटना के बाद पंडितजी से मेरा परिचय तो हो गया, किन्तु उनके मन का सन्देह दूर न हुआ। इसलिए वह जब कभी बापू से मिलने आते, मैं वहां से उठ आता।

५ मार्च को गांधी-इर्विन पैक्ट हुआ। उस दिन मैंने कार्यसमिति के सदस्यों को अपने घर भोजन के लिए बुलाया था। बापूजी की आज्ञा मैंने पहले से ले ली थी। वह सब बातों का ध्यान तो रखते ही थे। अगले दिन मुझे बुलाकर कहने लगे, "भोजन पर इतना खर्च क्यों किया ? सादा भोजन क्यों नहीं करवाया ?" मेरे पास इसका कोई जवाब न था।

जितनी बड़ी सभा गांधी-ग्राउंड में उस दिन हुई उतनी बड़ी सभा बाद में मैंने फिर कभी नहीं देखी। सब बाजार बन्द थे और बापूजी का भाषण सुनने के लिए भीड़-की-भीड़ उमड़ पड़ी थी। कम्पनी बाग के उस भाग का नाम उसी दिन से गांधी-ग्राउंड पड़ा।

८ मार्च १९३१ को बापू दिल्ली से गये। जाने से पूर्व वह माताजी से मिलने घर आये और मेरे रोजनामचे पर लिख गये—"हृदय की दृढ़ता बढ़ाओ।" उस दिन पर्दाबाग में उन्होंने स्त्रियों की विराट सभा में प्रवचन किया था।

कराची-कांग्रेस में शरीक होने के लिए १९ मार्च को बापू पुनः दिल्ली आये। २३ की रात को वह स्पेशल ट्रेन से कराची जा रहे थे। मैं उनके साथ था। गाड़ी में बैठे तो खबर मिली कि शाम के वक्त लाहौर जेल में भगतसिंह को फांसी लगा दी गई। बापू उनकी रिहाई के लिए पूरी कोशिश कर चुके थे और उन्हें यह आशा न थी कि फांसी इतनी जल्दी दे दी जायगी; इसलिए इस समाचार से उन्हें बड़ा धक्का लगा। जनता का गुस्सा उनपर ही उतरा करता था। शीशे तोड़कर लोग उनके डिब्बे में घुस गये और तरह-तरह से उन्हें तंग करने लगे। बापू ने सब कुछ बड़ी शांति के साथ सहा। तीसरे दिन जब वह कराची पहुंचे तो उनका स्वागत काले फूलों से किया गया, जिसका हवाला देते हुए उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन में एक प्रभावशाली भाषण देकर अहिंसा का महत्त्व समझाया।

कराची से लौटते समय उनके मंत्री श्री कृष्णदास को मियादी बुखार हो गया। उन्हें देखने के लिए बापू ७ अप्रैल को एक बार फिर मेरे घर आये। उसी दिन वह अहमदाबाद चले गये और वहां गुजरात विद्यापीठ में ठहरे, क्योंकि जबतक स्वतंत्रता प्राप्त न हो जाय तबतक आश्रम में न जाने का उनका व्रत था। अगस्त मास में मैं वहां उनसे मिलने गया। एक दिन आश्रम में किसी ने सांप को मार दिया। बापूजी को सूचना मिली तो उन्होंने विद्यापीठ के विद्यार्थियों के सामने प्रवचन करते हुए कहा—"यद्यपि सांप में विष भरा है तथापि वह भी ईश्वर-कृत है। वह किसलिए बनाया गया है यह तो वही (ईश्वर) जाने। मेरा ज्ञान अल्प है। हम सब एक बड़े जन्तु के मुंह में, जिसे मृत्यु कहते हैं, खेल रहे हैं। सांप भी उसीमें है। मृत्यु जब चाहे मुंह बन्द कर ले और यह जीवन-लीला समाप्त हो जाय। इसलिए हमें उसको मारने का अधिकार नहीं है। हां, हमें उससे भय है और यह भय उस समय तक रहेगा जबतक हम उस दर्जे तक न पहुंच जायं जब कि हमारे हृदय में किसीसे भी भय न रहे। मगर हम तो अपूर्ण हैं। सांप के मारने से मुझे दुःख नहीं होता, क्योंकि मेरे दिल में भय है। सांप ऐसा ही है जैसे दुष्ट मनुष्य। सांप का स्वभाव काटना है, दुष्ट का कष्ट पहुंचाना।"

इन दिनों बापूजी के गोलमेज कांफ्रेंस में जाने की चर्चा चल रही थी। सरकार ने जो समझौता किया था, उसमें अड़चनें डाली जा रही थीं और बापू विलायत जाने से इन्कार कर रहे थे। लार्ड इर्विन की जगह पर लार्ड विलिंग्डन वाइसराय बनकर आ चुके थे। आखिरकार उन्होंने बापूजी को शिमले बुलाया। बापूजी २४ अगस्त को अहमदाबाद से सीधे शिमला गये और गोलमेज कांफ्रेंस में शरीक होने का निश्चय करके वहां से स्पेशल ट्रेन से २७ तारीख को बम्बई लौटे। फरीदाबाद तक मैं उनको छोड़ने गया। २९ अगस्त को वह महादेवभाई, प्यारेलाल, देवदास और मीराबहन के साथ 'राजपूताना' जहाज से विलायत के लिए रवाना हो गये।

बापूजी को विलायत रवाना करके लार्ड विलिंग्डन अपना रंग दिखाने लगे। वह कांग्रेस को कुचलने की तैयारियां कर रहे थे। इसकी

खवर देने के लिए डा० अन्सारी ने मुझे सरदार पटेल के पास अहमदावाद भेजा। उस समय तक पता लग चुका था कि गोलमेज कांफ्रेंस में कुछ न होगा और वापू खाली हाथ लौटेंगे।

वापूजी २८ दिसम्वर को 'पिलसाना' जहाज में विलायत से लौटे और वम्वई में मणि-भवन में ठहरे। मैं उन्हें जहाज पर लेने गया था। मणि-भवन में रात को दो-दो तीन-तीन वजे तक कार्यसमिति की वैठकें होती थीं। दिल्ली और वम्वई के वीच तार खटकते रहे, लेकिन कुछ वन न पाया और आखिरकार ३१ दिसम्वर को सत्याग्रह जारी करने का प्रस्ताव पास हुआ। हम सव वापूजी की गिरफ्तारी की प्रतीक्षा करने लगे।

४ जनवरी १९३२ की सुवह के तीन बजे थे। अभी सोये थोड़ी ही देर हुई थी कि सव जाग उठे। पता लगा कि वापूजी की गिरफ्तारी के लिए पुलिस आ गई है। पुलिस कमिश्नर विल्सन था। उसने आकर वापूजी को वारंट दिखाया और कहा, "आपको गिरफ्तार करना मेरा कर्त्तव्य है!" वापू ने वारंट पढ़ा और आधा घंटा तैयार होने के लिए मांगा। उस दिन उनका मौन था। उन्होंने दातुन की, कई पत्र लिखे, 'वैष्णव जन' वाला भजन गाया गया और ३–४५ पर वह तैयार हो गये। सामान तो पहले से ही तैयार रखा था। सवने चरण छूकर वापू के आशीर्वाद लिये। इसके वाद वह पुलिस की मोटर में वैठकर यरवदा जेल के लिए रवाना हो गये मैं मणि-भवन के वरामदे में खड़ा दूर तक उनकी मोटर की लाल वत्ती देखता रहा। चलते समय किसीने एक तिरंगा झंडा मोटर के पीछे लगा दिया था। उसी दिन मैं दिल्ली के लिए रवाना हो गया।

ऐसा ही एक दृश्य दस वर्ष वाद ९ अगस्त, १९४२ को विड़ला-भवन वम्वई में देखने में आया। 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव ८ अगस्त को पास हो चुका था। दिल्ली में हमें पहले ही इस वात की सूचना मिल चुकी थी कि वापूजी व कांग्रेसी नेता गिरफ्तार हो जायंगे और मैं ५ अगस्त को ही यह समाचार वम्वई के विड़ला-भवन में पहुंचा चुका था कि वापूजी आगाखां महल में सरोजनीदेवी के साथ रखे जायंगे और दूसरे सदस्य अहमदनगर के किले में नजरवन्द किये जायंगे। सुन कर सवने वात हंसी

में उड़ा दी थी। मैं अपने एक मित्र के साथ कच्छ कैसल में ठहरा था। डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष हमारे साथ ठहरे हुए थे। सुबह पांच बजे मेरे मित्र ने मुझे जोर से जगा दिया और कहा कि पुलिस आ गई है। थोड़ी देर तक मेरी समझ में नहीं आया कि बात क्या है? बाद में समझ में आते ही मैं मोटर में सीधा बिड़ला-भवन भागा। वहां बापूजी की गिरफ्तारी के लिए पुलिस आ धमकी थी। सब तैयारियां हो चुकी थीं। प्रार्थना हुई, सबने बापूजी से आशीर्वाद लिये और उन्हें रवाना करने भीड़ दरवाजे तक आई। एक मोटर में वह और दूसरी में महादेवभाई तथा मीराबहन रवाना हुए। महादेवभाई के वह अन्तिम दर्शन थे। उसी दिन पूज्य बा भी गिरफ्तार हो गईं। उनके भी वह अन्तिम दर्शन थे।

: ५ :

तीन ऐतिहासिक उपवास

दिल्ली आकर मैं आंदोलन में शरीक हो गया और २१ फरवरी, १९३२ को सत्याग्रह करके गिरफ्तार हुआ। अगस्त तक मैं मुलतान जेल में रहा। वहां यरवदा जेल से बापूजी के कुशल-समाचार के पत्र बराबर आते रहते थे। जेल से बापूजी हर सप्ताह साबरमती के आश्रमवासियों को भी पत्र लिखा करते थे जो 'मंगल-प्रभात' और 'गीता-बोध' के नाम से प्रकाशित हुए। इसी जेल में उन्होंने एक नये चरखे का आविष्कार किया जो 'यरवदा-चक्र' अर्थात् 'पेटी-चरखा' कहलाया। जेल से रिहा होकर मैं देवलाली गया हुआ था कि एकाएक पता लगा कि २० सितम्बर से बापूजी हरिजनों के पृथक् चुनाव के विरुद्ध उपवास करने वाले हैं। समाचार पाकर मैं पूना पहुंचा। कुछ शर्तों पर सरकार बापूजी को रिहा करने को तैयार थी, मगर उन्होंने शर्तों के साथ रिहा होने से इन्कार कर दिया था। २० तारीख को १२ बजे बापू ने उपवास शुरू किया। मैं और प्यारेलालजी उस रोज शाम को उनसे मुलाकात करने जेल में गये। बापूजी दफ्तर में कुर्सी पर बैठे

थे। साढ़े आठ मास बाद उनके दर्शन हुए थे। उन्होंने मुझसे पूछा—"घबरा तो नहीं गये हो ? मन ठीक तो है ?" खूब आनन्द में थे। लगातार हंसते ही रहे। विदा होते समय बोले—"कल इसी वक्त आ जाना।"

दूसरे दिन हम फिर उनसे मिलने गये। वह एक अलग वार्ड में पहुंचा दिये गये थे। वह लेटे हुए थे और कुछ कमजोर दिखाई देते थे। सरदार वल्लभभाई और महादेवभाई भी उनके पास ही पहुंचा दिये गये थे। सामने ही स्त्रियों की जेल थी। दिन भर के लिए सरोजिनीदेवी भी वहां से आ जाती थीं।

उस दिन जब बापू कातने बैठे तो सरोजिनीदेवी से बोले—"मैं अपनी जगह तुमसे कतवाना शुरू करूंगा।" सरोजिनीदेवी ने कहा—"मेरा तो अगूंठा ही ठीक नहीं है।" यह सुन बापू हँसकर बोले—"हां, जैसे पुराने जमाने में सरकार के भय से बंगाल के जुलाहे अंगूठा कटवा देते थे वैसे ही तुमने मेरे सामने कातने के डर से अपना अंगूठा खराब कर लिया है।"

जेल में मुलाकातियों पर कोई पाबंदी नहीं थी। सुबह से ही मिलने आने वालों का तांता लगा रहता था। उस दिन मेहरबाबा के कुछ शिष्य मिलने आये और कहने लगे कि बाबा ने यह संदेश भेजा है कि यदि आप चालीस दिन उपवास रखें तो वह आपको ईश्वर दर्शन करा सकते हैं। बापू ने कहा—"यदि मैं ऐसा करूं तो वह प्रतिज्ञा भंग होगी; क्योंकि मेरा व्रत तभीतक है, जबतक हरिजनों के लिए पृथक चुनाव हट न जाय। संयुक्त चुनाव मंजूर हुआ नहीं और मैंने उपवास खोला नहीं।" बापू ने यह भी कहा—"यह कदम उठाने का तो मैं बहुत दिनों से विचार कर रहा था, मगर बिना अंतरवाणी सुने मैं कुछ नहीं करता। जैसे ही ईश्वर ने मेरे कानों में कहा कि अब समय आ गया है वैसे ही मैंने उपवास शुरू कर दिया।"

बापूजी का यह उपवास सात दिन चला। हम सुबह से शाम तक जेल में रहते थे। कमजोरी बढ़ रही थी, मगर बापूजी ने कातना नहीं छोड़ा। पूज्य बा को उनके साथ रहने की इजाजत मिल गई थी। बापू

एक आम के पेड़ के नीचे लेटे रहते थे। पानी पीने में कठिनाई होने लगी थी; क्योंकि उबकाई शुरू हो गई थी। मिलनेवाले बहुत आते थे। बापू को बोलना बहुत पड़ता था। अधिक बोलने पर वह एक दिन कहने लगे—

"कहा जाता है कि मनुष्य अमुक संख्या में श्वास लेकर आता है, जो उसे पूरे करने ही होते हैं, यही उसकी आयु है। यह बात ठीक ही है। अपनी प्राण-शक्ति को हम जितनी जल्दी खत्म कर देंगे, मृत्यु उतनी ही निकट होगी और यदि संग्रह करते रहेंगे तो देर से होगी। जाना तो समय पर ही है, मगर खर्चे की बात है। रुपया जल्दी खर्च करदें तो कंगाल हैं।"

सातवें दिन उनकी हालत खराब हो गई। खून का दबाव बढ़ गया था। सबके चेहरों पर चिंता के बादल छा गये थे। डाक्टर भी घबड़ा गया था। समझौता हो चुका था, मगर विलायत से मंजूरी नहीं आई थी। हर क्षण उसकी प्रतीक्षा हो रही थी। बापू का वजन घटकर ९२ पौंड रह गया था। उनको हिलने तक की इजाजत न थी। वह जिस दिन से इस वार्ड में आये थे खुले मैदान में आम के पेड़ के नीचे बुद्ध भगवान की तरह तपस्या कर रहे थे। शरीर की हड्डी-हड्डी दीखने लगी थी।

उस दिन गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर और बापू का मिलन देखने योग्य था। गुरुदेव अपना लम्बा चोगा पहने, झुकी कमर पर पीछे की ओर हाथ रखे बड़े धीमे-धीमे कदम बढ़ाते हुए बापू के पलंग के पास पहुंचे। बापू ने थोड़ा-सा उठकर उन्हें छाती से लगा लिया और उनकी सफेद दाढ़ी पर बालकों की तरह हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद थक कर वह सो गये।

आखिर शाम को चार बजे इन्स्पेक्टर जनरल गवर्नमेंट हाउस से पत्र लेकर आया, जिसमें लिखा था कि अंग्रेजी सरकार ने समझौते की शर्तें मान ली हैं। बापू ने पत्र पढ़ कर सरदार पटेल को दे दिया और थोड़ी देर विचार करने के बाद उपवास खोलने का निश्चय किया।

उपवास खुलने की तैयारियां शुरू हुईं। कविवर ने सबसे पहले बंगाली में एक भजन गाया। फिर उपनिषदों के मंत्र पढ़े गये, 'वैष्णवजन' वाला भजन गाया गया और पूज्य बा के हाथ से दिये गये मौसम्मी के रस से

वापू ने उपवास खोला। सवको मिठाई और फल वांटे गये। उस समय वहां एक मेला-सा लगा हुआ था।

यह वात २६ सितम्वर की है। वापूजी ने उपवास खोल तो दिया, मगर वह कमजोर वहुत हो गये थे। उनकी सेवा करने के लिए उस दिन से मुझे और प्यारेलाल को जेल में ही रहने की इजाजत मिल गई थी। विना सजा के किसीको जेल में रहने का शायद यह पहला ही अवसर हो।

वहां की स्वतन्त्रता देखकर मैं तो हैरान था कि यह जेल है या खुला दरवार ? वापू कैदी हैं या शासक ? वह जो कहते थे वही होता था।

दूसरे दिन २७ सितम्वर को हिन्दी हिसाव से रेंटिया वारस (चरखा द्वादशी) अर्थात् वापूजी की जन्म-तिथि थी। सुवह छः वजे से ही दर्शनार्थी आने लगे। सवसे पहले जेल के सुपरिंटेंडेंट की पत्नी फूल लेकर आई। फिर अखवारनवीस, कुटुम्वीजन तथा मित्रगण आये। दिन भर तांता लगा रहा। फल और फूलों से वार्ड भर गया।

तीन दिन हम दोनों वहां रहे। वापू की कमजोरी दूर होने लगी थी। तीसरे ही दिन खवर आई कि मित्रों और साथियों को सरकार ने जो सुविधाएं दी थीं वे वापस ले ली गई हैं और हमें शाम तक जेल से वाहर चले जाना है। वापू से आशीर्वाद लेकर हम वहां से विदा हुए। आते समय मैंने वापू से अपने लिए कार्यक्रम पूछा, मगर उन्होंने कहा कि जेल में रह कर वह सलाह कैसे दे सकते हैं, 'जो उचित लगे वह करो।'

३ दिसम्वर को पता चला कि वापू ने दुवारा उपवास शुरू कर दिया है। समाचार पढ़कर चिंता हुई और मैंने उसी क्षण उन्हें तार भेजा। उत्तर मिला कि उपवास छोड़ दिया है, चिंता की कोई वात नहीं है। इसी संवंध में उनका ९ दिसम्वर का लिखा हुआ एक पत्र भी आया जो इस प्रकार था—"एक उपवास करना पड़ा और वह भी अव पुरानी वात हो गई है। थोड़ी अशक्ति पहले से ही है, लेकिन वह आहिस्ता-आहिस्ता घटती जायगी। उपवास मेरे जीवन का एक नित्य और अवि-भाज्य अंग हो गया है। उससे मुझे जो जानते हैं और निकटवर्ती हैं, उनको घवराना नहीं चाहिए। यह विश्वास रखो कि इस शरीर से जितनी सेवा

लेनी है, उतनी लिये बिना ईश्वर इसका नाश नहीं होने देगा।"

बापूजी जेल में थे। सत्याग्रह का जोर घट रहा था। मगर जेल-यात्रा बन्द नहीं हुई थी। २६ जनवरी, १९३३ को मैं तीन मास के लिए फिर जेल चला गया। बापूजी के पत्र बीच-बीच में जेल में मिलते रहते थे। मेरे जन्म-दिन पर आशीर्वाद भेजते हुए उन्होंने लिखा था—"जन्म-दिन के बारे में मेरे आशीर्वाद हैं ही। ईश्वर तुमको अनासक्ति और समता देगा।"

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में एक बार फिर खबर मिली कि बापूजी उपवास करने वाले हैं। समाचार से दिल में काफी घबराहट पैदा हो गई। कैद खतम होने में कुछ दिन बाकी थे। ईश्वर से मनाने लगा कि बापू का उपवास शुरू होने से पूर्व ही उनके पास पहुंच जाऊं। आखिर ४ मई को रिहाई मिली और दिल्ली होता हुआ मैं ८ मई को पूना पहुंच गया।

बापूजी यरवदा जेल में सुबह का भोजन करके २१ दिन का उपवास शुरू कर चुके थे। मैं उनसे उसी आम्र वृक्ष वाली बैरक में जाकर मिला। उन दिनों बापू के सभी साथी जेल में थे। मुलाकात करके मैं शाम को पर्णकुटी लौट आया। रात के करीब ९ बजे होंगे कि तीन मोटरें ऊपर आती हुई दिखाई दीं। पास जाकर क्या देखता हूं कि अगली मोटर से बापूजी उतर रहे हैं। उनको उपवास के कारण रिहा कर दिया गया था। साथ में सरोजिनी नायडू थीं। आते ही उन्होंने एक बयान दिया और छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

रात को सोते समय उन्होंने अपना रोजनामचा मुझे सौंपते हुए कहा कि अब तुम जानो। मेरा रोजनामचा लिखते रहो और देख-भाल करते रहो। सब काम तुम्हारे सुपुर्द है। मैं उनके सिरहाने ही सो गया।

उन २१ दिनों की पुण्य-स्मृति मेरे लिए एक अमूल्य धरोहर है।

बापूजी इस बात के लिए काफी सख्त थे कि कोई व्यक्ति अपना काम छोड़ कर न आए। एक भाई सेवा करने आए तो उनको फौरन लौटा दिया। मैं और मेरे सहायतार्थ धुरंधरजी, हम दो ही सेवा के लिए नियत थे। सरोजिनीदेवी, जो बापूजी के साथ ही रिहा कर दी गई थीं, बाहर की देख-

भाल करती थीं। मथुरादासभाई पत्र-व्यवहार देखते थे। डा० दिनशा मेहता मालिश आदि करते थे।

जेल से बाहर आते ही बापू ने राजनीति में हिस्सा लेना शुरू क दिया। जबतक जेल में रहे तबतक उन्होंने किसीको सलाह तक न दी उन्होंने एक बार कहा था—"मेरे दिमाग में एक तरह से अलग-अलग खा बने हुए हैं। मैं जिस विषय पर ध्यान देना चाहता हूं, वही उस वक्त आ रहता है, बाकी की खिड़कियां बन्द हो जाती हैं।" यह था उनका संयम

उपवास के दूसरे ही दिन से बापू कमजोर होने लगे थे। चक्क और मतली शुरू हो गई थी। इसलिए वह दो ही दिन कात सके। उनक उन दिनों का कता सूत आज भी मेरे पास स्मृति-स्वरूप रखा हुआ है।

कमजोरी बढ़ते देख मेरे साथ बालकृष्ण कालेलकर और हरिह शर्मा भी सेवा में लग गए। डा० अन्सारी भी आगये थे। छठे दिन बापूजी ने गीता सुनना आरम्भ कर दिया। वह पलंग पर आंखें बन्द किये प रहते। उन्होंने क्षौर करवाना भी बन्द कर दिया था, बस राम में ह ध्यान लगा रहता था। काका साहब पाठ सुनाते। कृष्ण की छवि पट पर रखी रहती। धूप, दीप और सुगंधि जलती रहती। दिन में व रामायण सुनते। पूज्य बा भी साबरमती जेल से रिहा होकर आगई थीं थोड़े दिन बाद महादेवभाई भी रिहा होकर आगये और डा० विधानचन राय डा० अन्सारी के साथ देख-रेख करने लगे।

बापूजी का यह २१ दिनों का चिंताजनक लम्बा उपवास २ मई को समाप्त हुआ। उनका वजन घटकर सिर्फ ८०॥ पौंड रह गया था अर्थात् २२ पौंड कम हो गया था। वह हड्डियों के ढांचा-मात्र रह गये थे उन्हें करवट लिवाने में भी भय लगता था। मगर वह शांत थे, प्रभु में ध्यान लगाये लेटे रहते। ईशोपनिषद्, गीता, रामायण और भागवत् सुनन ही उन दिनों उनकी खुराक थी।

२९ की सुबह हुई। डा० दिनशा ने उनका क्षौर किया। बापूज ने इस उपवास में फोटो लेने की मनाही कर रखी थी। आज डा० दिनश ने उनका पहला फोटो खींचा। उनके तेजोमय और हास्यपूर्ण मुख की छट

अनिर्वचनीय थी। उन्होंने महादेवभाई से गीता का सम्पूर्ण पाठ सुना। डा० अन्सारी, विधानचन्द्र राय और गिल्डर ने उनके शरीर की परीक्षा की। ठीक १२ बजे रामधुन शुरू हुई। फिर डा० अन्सारी ने कुरान शरीफ की आयत पढ़ी। ईसाई प्रार्थना हुई। पारसी प्रार्थना हुई। काकासाहब ने संस्कृत में प्रार्थना पढ़ी। महादेवभाई ने कवि सम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक भजन गाया। अन्त में 'वैष्णवजन' गाया गया और बड़ी धीमी आवाज में बापू ने महादेवभाई को एक संदेश लिखाया। १२ बज कर २७ मिनट पर पूज्य बा ने दो औंस सन्तरे का रस उन्हें पीने को दिया और २१ दिन का यह महान् यज्ञ ईश्वर-कृपा से कुशलतापूर्वक समाप्त हो गया। सबने सुख की सांस ली और प्रभुका उपकार माना।

उपवास के दिनों की कुछ घटनाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

एक दिन बापूजी ने पूछा कि कमोड किसने साफ किया है ? मैंने कहा कि मैं काम में था, मेरी गैर-मौजूदगी में भंगी आया और साफ कर गया, वरना तो मैं ही करता हूं। इसपर उन्होंने कहा कि इसका पूरा ध्यान रखना कि नौकरों से कोई काम न लिया जाय।

बापू के नीचे जो गद्दा बिछता था उसे मैं अगले रोज दिन भर के लिए धूप में डाल देता था। इसलिए दो गद्दों की जरूरत थी, मगर बापू के पास खादी का एक ही गद्दा था। पर्णकुटी में खादी का कोई दूसरा गद्दा नहीं मिला। इसलिए मैं मिल के कपड़े का गद्दा बिछाने लगा; उसके ऊपर की चादर ही खादी की होती थी। एक दिन वह गद्दा बापू की निगाह में पड़ गया। तुरन्त मुझसे पूछ बैठे कि गद्दा खादी का क्यों नहीं है ? मैंने अपनी सफाई देनी चाही, मगर बापू के सामने एक न चली। कहने लगे कि जब भरोसा रखकर सब कुछ तुम पर छोड़ दिया है तो क्या तुम इस प्रकार मुझे मारोगे ? उस दिन की वह बात मैं कभी नहीं भूल सका।

मैं उनकी शुश्रूषा में लगा हुआ था और आने-जाने वालों की देख-भाल एक दूसरे भाई करते थे। बापू का उपवास पूरा हो चुका था, मगर वह अभी काफी कमजोर थे। बिना उन सज्जन की आज्ञा के बापूजी

के पास कोई जाने नहीं पाता था। एक दिन मैं आगंतुकों के ठहरने के कमरे में जाकर क्या देखता हूं कि एक बहुत ही वृद्ध पारसी, आंखों से निपट अंधे, अपनी पोती के साथ बैठे हैं और दर्शन करने का आग्रह कर रहे हैं। उनकी भक्ति-भावना को देखकर मैं उन्हें दर्शन करवाने ले ही गया और प्रवेश-द्वार पर खड़ा करके बताया कि गांधीजी उधर पलंग पर लेटे हुए हैं। बेचारे आंखों से तो देख नहीं सकते थे। मेरी बात सुनते ही जमीन पर मस्तक टेककर प्रणाम करने को झुक गये और उनकी आंखों से अश्रु-धारा बह निकली। उस दृश्य को देखकर मैं अपने से कहने लगा कि हम, जो चौबीसों घंटे बापू के निकट रहते हैं, कैसे पाषाण-हृदय बन जाते हैं कि ऐसे-ऐसे भक्तों को भी उनके दर्शन नहीं करने देते। मंदिर में भगवान की मूर्ति के पास रहते-रहते जैसे पुजारी भावनाहीन बन जाते हैं और उनके लिए भगवान की आराधना का कुछ महत्त्व नहीं रह जाता, वैसे ही बापू के निकट रहते-रहते हम भी भावनाहीन बन गये हैं। इसीलिए बापू कहा करते थे कि जो उनसे दूर, अति दूर रहते हैं, जिन्होंने उन्हें कभी देखा भी नहीं है, वे उनके अधिक निकट हैं और जो उनके चारों ओर रहते हैं, वे उनसे दूर हैं।

बापूजी का उपवास समाप्त होने के बाद मुझे ज्वर आने लगा और इलाज करवाने के लिए मैं डा० मेहता के क्लिनिक में भेज दिया गया। इसके कुछ ही दिनों बाद बापूजी ने एक कान्फ्रेंस बुलाई, जिसमें भारत के हर हिस्से से प्रतिनिधि बुलाये गये थे। दिल्ली के प्रतिनिधित्व के लिए मुझे भी निमंत्रण मिला। मगर बापू यह कभी पसन्द नहीं करते थे कि उनकी टुकड़ी के साथी बिना उनकी अनुमति लिये किसी कान्फ्रेंस आदि में शरीक हों। गांधीजी का प्रवचन सुनने की चाह किसके मन में न होगी? वहां रहते उनको न सुना जाय, इतना संयम था नहीं। अतः इस अधिकार से कि मुझे प्रतिनिधि मानकर बुलाया गया है, मैं उनसे बिना पूछे उस कान्फ्रेंस में जा बैठा। बापू की निगाह से बचना आसान न था, न मैं उनसे छिपना ही चाहता था। मैंने अनुमति इसलिए नहीं ली थी कि मन में खटका था कि कहीं इन्कार न हो जाय। बैठक के बाद बापू के सामने पेशी

हुई। उन्होंने पूछा--"यहां कैसे आये ?" मैंने कहा--"मुझे निमंत्रण मिला था। दिल्ली की ओर से प्रतिनिधि बन कर आया हूं।" कहने लगे, "अच्छा ! इंग्लैंड मे मैं अकेला तैंतीस करोड़ की नुमाइंदगी कर सकता था, यहां मैं एक तुम्हारी भी नहीं कर सकता !" सुनकर लज्जा से सिर झुक गया। उस दिन से सभाओं और सम्मेलनों में शरीक होने की उतनी चाह न रही। बंबई और दिल्ली में कांग्रेस महासमिति के जलसे हुए, बापू प्रवचन भी करने गये, मगर उनकी अनुमति बिना मैं शरीक न हो सका। अब तो चाह ही नहीं रह गई, सब शून्य हो गया है।

बापूजी का पांच चीजें खाने का व्रत था। एक दिन डा० दिनशा ने उनके इस व्रत का कारण पूछा तो बापू ने बताया कि १९१४ में कुम्भ के अवसर पर वह हरद्वार गये थे। वहां धर्मकी जगह बहुत पाप होते देखकर सोचा कि कुछ व्रत लेना चाहिए। उसी अवसर पर यह व्रत लिया था।

उन दिनों बापूजी मूंगफली और खजूर खाया करते थे और केले के साथ एक औंस जैतून का तेल लेते थे। संतरे वगैरा का त्याग तो नहीं था; लेकिन अगर सस्ते मिल जाते और बजट में आ जाते तब ही खाते थे। उस अवसर पर बापूजी ने तीन व्रत लिये-- (१) पांच ही चीजें खाना, (२) सूर्यास्त के बाद न खाना, (३) दूध न पीना।

जब १९१९ में वह बहुत बीमार हुए, तो बा ने कहा कि दूध न पीने का व्रत लेने के समय आपके मन में गाय या भैंस के दूध की बात थी, इसलिए आपको बकरी का दूध पीने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उस समय से उन्होंने बकरी का दूध पीना शुरू कर दिया।

१८ जुलाई, १९३३ को बापूजी पूना से अहमदाबाद चले गये और मुझे इलाज कराने के लिए वहीं छोड़ गये। वहां जाकर वह पहली अगस्त को फिर गिरफ्तार हुए और दूसरी अगस्त को महादेवभाई के साथ यरवदा जेल पहुंचा दिये गये। ४ अगस्त को सुबह नौ बजे उन्हें यरवदा की सीमा से निकल जाने का हुक्म मिला, जिसका उल्लंघन करने पर उन्हें एक वर्ष की सजा मिली।

कुछ दिनों के लिए मैं पूना से बंबई आ गया था। वहां एकाएक

खबर मिली कि १६ अगस्त से बापू ने फिर उपवास आरंभ कर दिया है और इस बार सरकार की ओर से कड़ाई भी बहुत है। यह उपवास बापू ने 'हरिजन' अखबार के प्रकाशन के लिए सरकार द्वारा दी गई सुविधा के वापस ले लिये जाने पर आरंभ किया था। उनकी हालत चिंताजनक होती जा रही थी। उपवास के पांचवें दिन वह सासून अस्पताल भेज दिये गये। इस बीच दीनबन्धु ऐंड्रूज उनकी रिहाई के लिए प्रयत्न करते रहे।

आखिर उपवास के आठवें दिन २३ अगस्त को बापूजी रिहा कर दिये गये और वह सीधे पर्णकुटी लाये गये। वह बहुत कमजोर हो गए थे। उन्होंने कहा कि मेरे छूटने में ईश्वर का चमत्कार है। मुझे इसकी आशा नहीं थी, क्योंकि सरकार ने निश्चय कर लिया था कि इस रोज-रोज के झगड़े से एक बार ही दुनिया की बदनामी ले लें। अगर गांधी मर जाय तो यह कांटा सदा के लिए दूर हो। लेकिन दुनिया की राय के सामने सरकार को झुकना ही पड़ा।

बापूजी ने यह भी कहा कि इस बार मेरा इरादा मौन समाधि ले लेने का था, क्योंकि वही सबसे अधिक शांति देने वाली वस्तु है और उसकी सहायतासे बिना किसीसे आशा रखे शरीर छोड़ा जा सकता है, किन्तु ऐंड्रूज साहब ने ऐसा करने से मना किया।

इसके बाद बापूजी वर्धा चले गये और फिर सात-आठ मास तक वे लगातार हरिजन कार्य के लिए भ्रमण करते रहे। यात्रा में से उनके पत्र आते रहते थे। यात्रा से वर्धा जाकर उन्होंने सात से चौदह अगस्त (१९३४) तक सात दिन का फिर उपवास किया। मैंने बहुत चाहा कि उनकी सेवा के लिए वहां पहुंचूं, लेकिन उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और एक पत्र में लिखा—"खेद होता है कि तुम इतनी अधीराई (अधीरता) बताते हो। इसको मैं कैसे उत्तेजन दूं? तुम्हें ऐसी बातों में भी संयम पालन करना चाहिए। क्या सेवा करोगे? आश्रम सेवक और सेविकाओं से भरा है। बाहर से सबको रोक रहा हूं। मेहता को भी रोक दिया, विधान को भी। अब तुम्हें कैसे इजाजत दूं?"

: ६ :

हरिजन-निवास

२९ दिसंबर, १९३४ को बापू एक मास के लिए दिल्ली आए। इस बार वह किंग्सवे पर हरिजन-निवास में ठहरे। दिल्ली में वे इतने लंबे समय तक बहुत वर्षों बाद ठहरे थे। हरिजन-निवास तब स्थापित ही हुआ था। वहां उस समय केवल एक मकान था, जो बापूजी के ठहरने के लिए ठीक किया गया था। औरों के रहने के लिए तंबू लगाये गये थे। प्रबंध की देख-भाल मेरे जिम्मे थी। उस वर्ष इतनी ठंड थी कि रात को पानी जम जाता था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर दिल्ली आये हुए थे और लाला रघुवीरसिंह के मकान पर कश्मीरी दरवाजे ठहरे थे। वह शांतिनिकेतन के लिए पैसा जमा करने निकले थे और एक नाटक खेलने वाले थे। बापू को यह अच्छा नहीं लगा कि इतनी वृद्धावस्था में चंदे के लिए वे नाटक खेलें। उन्होंने तुरंत महादेवभाई को भेजा और जितना रुपया दरकार था एक मित्र से दिलवा दिया। बापू ने हम सबको भी गुरुदेव से मिलाया, उन्हें मैंने पहली बार इतने निकट से देखा था।

२ जनवरी, १९३५ को बापू ने हरिजन-निवास का शिलान्यास किया। उस बार उन्होंने दिल्ली के देहातों का दौरा भी किया। नरेला हरिजन कान्फ्रेन्स में भाग लिया और जामिया मिलिया भी देखी। देहातों का दौरा उन्होंने तीन दिन तक किया। उन दिनों वर्षा लगातार हो रही थी, किन्तु बापू ने अपना कार्यक्रम नहीं बदला। पहले दिन वह नरेला और बांकनेर गये, दूसरे दिन सुलतानपुर और तीसरे दिन रामताल और हुमायूंपुर।

कैम्प के प्रबंध के बारे में बापूजी मुझसे हर बात की तफसील पूछते रहते थे। सब्जी का क्या भाव है, खाने का क्या खर्च आता है, कितने मेहमान भोजन करते हैं, इत्यादि। एक दिन उन्होंने थूकदानी मंगाई। आदमी पीकदान ले आया, जो कीमती थी। देखकर वह नाराज हुए और

उन्होंने मिट्टी की दो पैसे वाली थूकदानी मंगाकर रखी।

पूरे एक महीना दिल्ली ठहर कर बापूजी २८ जनवरी को वर्धा चले गये। इसके बाद कई वर्षों तक जब कभी वह दिल्ली आते, हरिजन-निवास में ही ठहरा करते थे।

जाते समय बापूजी मुझे वर्धा आने को कह गये थे। अतः २८ फरवरी को मैं वहां के लिए रवाना हुआ। बापू अब मगनवाड़ी में रहने लगे थे। वहां आश्रम-सा बन गया था। बापू मुझे अपने साथ रखना चाहते थे, किंतु जब भी मैं रहने के विचार से जाता, दुर्भाग्यवश बीमार पड़ जाता। बापू मेरी लम्बी बीमारी देख चुके थे। उनकी देख-रेख में मेरा उपचार अबतक चल रहा था। वहां पहुंचकर कुछ दिनों बाद ही मैं फिर बीमार हो गया। बापूजी ने मुझे तुरंत ही दिल्ली जाने की आज्ञा दी। इस तरह १५ दिन बाद ही मुझे वहांसे वापस आना पड़ा।

८ मार्च, १९३६ को कोई १४ मास बाद, बापूजी कुछ दिनों के लिए फिर दिल्ली आकर हरिजन-निवास में ठहरे। इस बीच वहां भारी परिवर्तन हो चुका था। कई मकान नये बन गये थे। विद्यालय खुल चुका था। बापू उन दिनों अस्वस्थ थे। उनके खून का दबाव बढ़ गया था। वह कुछ दिन आराम करने को आये थे।

उसी वर्ष अप्रैल मास में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में होने वाला था। पं० जवाहरलाल नेहरू उसके प्रधान चुने गये थे। दिल्ली में कार्यसमिति की बैठक हुई, जो पूरे एक सप्ताह तक चलती रही।

बापूजी सुबह चार बजे उठते। ४–२० पर प्रार्थना होती। इसके बाद वह सो जाते। ७ बजे भोजन करके घूमने निकलते। ८ से ९ तक रामायण सुनते। ११ बजे स्नान; फिर आराम। ३ बजे भोजन; फिर कातना। ६ बजे घूमना; ७ बजे शाम को प्रार्थना और ९ बजे शयन। मुलाकातें पहले की तरह दिन भर चलती रहती थीं। बापूजी दिल्ली २७ मार्च तक ठहरे। उसी दिन वह लखनऊ कांग्रेस में भाग लेने चले गये। प्रबंध करने के लिए मुझे एक दिन पहले भेज दिया था।

इस बार बापू हरिजन-निवास में देवदासजी के घर पहली मंजिल

में ठहरे थे। नीचे एक स्त्री और पुरुष सुबह से ही यह संकल्प करके बैठ गए कि जबतक गांधीजी के दर्शन न कर लेंगे भोजन नहीं करेंगे। शाम होने आ गई और वे भूखे-प्यासे बैठे रहे। मुझे इस बात का ध्यान भी नहीं था, किंतु प्रबंध था मेरे जिम्मे, इसलिए बापू ने मुझे बुलाकर कहा—"एक दम्पती सुबह से भूखे-प्यासे बैठे हैं। उन्होंने दर्शन करने की हठ ली है। उन्हें ले आओ।" यह सुन कर मुझे पता लगा कि बापू कितने भक्त-वत्सल थे।

: ७ :

लखनऊ-कांग्रेस और उसके बाद

२८ मार्च की सुबह बापूजी लखनऊ पहुंचे। उसी दिन उन्होंने स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। उस वर्ष कांग्रेस की वह सबसे बड़ी प्रदर्शनी थी। बापू उसे हर रोज नियमपूर्वक देखने जाते थे। खर्च काफी हुआ था और उन्हें इस बात की चिंता थी कि घाटा न होने पाए, इसलिए वह हर शाम को पूछते कि टिकटों से कितनी आमदनी हुई है।

लखनऊ में २० अप्रैल तक ठहरे। वह यूनिवर्सिटी रोड पर एक बंगले में ठहराये गये थे। सेठ जमनालालजी भी उनके साथ ठहरे थे। दूसरे साथियों की संख्या करीब ५० तक पहुंच गई थी। लखनऊ की गरमी मशहूर है। उसपर अप्रैल का महीना। बुरा हाल था और सबसे बड़ी मुसीबत यह कि प्रबंध किसी काम का नहीं था। सभी नेता थे, परवाह कौन करे? शहर चार मील दूर था, कोई सामान आसानी से मिलता ही न था। लोग वायदे तो कर जाते थे। मगर पहुंचता कुछ नहीं था। 'नापे सौ गज, फाड़े नौ गज' वाला मसला था। नाकों दम आगया। मगर बापू तो हर हालत में निभा लेते थे। वह असुविधा महसूस ही कब करते थे? बीच में कुछ दिनों के लिए कार्यसमिति के सदस्यों के साथ उन्हें इलाहाबाद जाना पड़ा। कांग्रेस समाप्त होने पर वह वर्धा गए

और मैं दिल्ली चला आया। उसके बाद स्वास्थ्य-सुधार के लिए वह कुछ दिनों के लिए नन्दीदुर्ग चले गए थे। वहां से लौट कर वह कुछ ही दिन मगनवाड़ी ठहरे और सितम्बर १९३६ में सेवाग्राम रहने चले गए।

अक्तूबर, १९३६ में बापू भारतमाता मंदिर का उद्घाटन करने बनारस गए। दिसम्बर के आखिरी सप्ताह में बापूजी फैजपुर कांग्रेस में गए। यह पहली कांग्रेस थी जो शहरों को छोड़कर देहात में हुई थी। यहां भी ग्राम-उद्योग प्रदर्शिनी हुई थी जिसमें सब वस्तुएं देहात की ही रखी गई थीं। इस बार मैं बापूजी के साथ न ठहरकर अलग ठहरा था, मगर रहता था दिनभर उनके पास ही। अधिवेशन देखने लोग इतनी बड़ी संख्या में आए थे कि बापूजी ने दूसरे ही दिन कांग्रेस अधिवेशन समाप्त करने को कहा, क्योंकि खाने-पीने का सामान निपट चुका था और गंदगी से बीमारी फैलने का डर था।

सन् १९३७ के मार्च महीने में दिल्ली में कनवेंशन हुआ था। बापू को उसमें शरीक होने आना पड़ा। इस बार भी वह हरिजन-निवास में ही ठहरे और एक सप्ताह रुके—१५ मार्च से २२ मार्च तक। इसके बाद वह वर्धा चले गये। उन दिनों बापू सुबह-शाम की सैर अक्सर नंगे पैर करते थे। सड़क पर रोड़ी बिछी थी। फिर भी काफी दूर नंगे पैर ही घूमते थे।

उन दिनों बापू की डाढ़ में दर्द था। उसे निकलवाने वह डाक्टर के पास जा रहे थे। मैं उनके साथ जाने वाला था कि इतने में एक सज्जन उनसे मिलने आ गये और मोटर में साथ हो लिये। मैं रह गया। चलते समय मैंने उन सज्जन से कह दिया कि जो डाढ़ निकले उसे अपने साथ लेते आना और मुझे दे देना। वह डाढ़ तो ले आये मगर उसे बापूजी के सुपुर्द कर दिया। अब मैं उनसे कैसे मांगूं? डाढ़ उनकी डेस्क में रख दी गई। मेरी निगाह उसपर बराबर लगी रही। जब बापू दिल्ली से जाने लगे तो मैंने उनका सब सामान बंधवा दिया, मगर डाढ़ को जान-बूझकर डेस्क में ही रहने दिया और बाद में उसे अपनी जेब के हवाले कर दिया। लेकिन डाढ़ इस तरह जेब में बन्द रहने वाली कब थी! वह तो

जोर-जोर से पुकारने लगी कि यह चोरी है ! यह मोह है ! यह मूढ़ता है ! बापू को बिना बताये मुझे क्यों लिया ? आखिर मैंने सारी बात बापू को लिखी और डाढ़ भी उनके पास भेज दी। वह न मेरे पास रही, न उन सज्जन के पास।

४ अगस्त, १९३७ को बापूजी वाइसराय लार्ड लिनलियगो से मिलने के लिए दिल्ली आये और उसी शाम को वह वापस चले गये। स्टेशन जाते समय रास्ते में उनकी मोटर में पंचर हो गया। पीछे-पीछे एक अंग्रेज मोटर में आ रहा था। वह बापू को देखकर रुक गया और उनसे अपनी मोटर में चलने के लिए प्रार्थना की। तब बापू उसमें सवार होकर स्टेशन पहुंचे। इसके बाद वह जब कहीं जाते तो अक्सर उनके साथ एक अतिरिक्त मोटर रखी जाती थी।

फरवरी, १९३८ में हरिपुरा कांग्रेस हुई। मैं भी वहां गया और बापूजी के साथ ही ठहरा। देहातों में आयोजित कांग्रेस अधिवेशनों में हरिपुरा जैसा अधिवेशन फिर नहीं हुआ। इस अधिवेशन के सभापति सुभाषबाबू थे। उनका जलूस बैलगाड़ी में निकाला गया था। सरदार वल्लभभाई ने उसे सफल बनाने में कोई कसर नहीं रखी। लाखों नरनारी अधिवेशन को देखने आये, फिर भी प्रबन्ध और सफाई में कमी न आ पाई। रोज हजारों आदमी कांग्रेस की रसोई में भोजन करते थे मगर वहां का भंडार अक्षय था। सामान सब ग्राम-उद्योग का था। चक्की का पिसा हुआ आटा, गाय का दूध-घी, कुटा हुआ चावल। गुजरात की कुशलता का वह अधिवेशन एक नमूना था।

अधिवेशन समाप्त होने पर मैं बापू के साथ ही २२ तारीख को वर्धा चला गया। सेवाग्राम की यह मेरी पहली यात्रा थी। मैंने बापूजी से कुछ समय वहीं रहने की आज्ञा मांगी, लेकिन उन्होंने मुझे दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाने का आदेश दिया। इसका मुख्य कारण यह था कि उनको मेरे स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रहता था और वर्धा का जलवायु मेरे अनुकूल नहीं पड़ता था। उन्होंने कहा—"मुझसे दूर रहते हुए भी मुझमें ओतप्रोत हो सकते हो। यदि इस जन्म में मेरे निकट रहने का अवसर न

भी आया तो क्या हुआ ? कल्याण-कर्म करने वाले का नाश नहीं होता, यह गीता में कहा है ।" अतः २८ फरवरी, १९३८ को उनसे आशीर्वाद लेकर मैं दिल्ली लौट आया ।

मार्च, १९३८ में डेलांग स्थान पर, जो पुरी के इलाके में है, गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन था। बापूजी वहां गए हुए थे। उनकी आज्ञा से मैं भी वहां गया। बापूजी तालाब के किनारे एक झोंपड़ी में ठहराये गए थे। संघ के अधिवेशन में भाग लेने वाले सभी लोगों के लिए कुछ देर शारीरिक परिश्रम करना आवश्यक था। एक जोहड़ था, उसकी खुदाई करनी होती थी। भोजन का सब सामान ग्राम-उद्योग का था। एक छोटी-सी प्रदर्शनी भी की गई थी, जिसमें उड़ीसा की कला के नमूने रखे गए थे। बापूजी हर रोज एक घण्टा परिषद् में भाग लेते, प्रश्नों का उत्तर देते और प्रवचन करते। उनके खून का दबाव उन दिनों बहुत बढ़ा हुआ था। वह वहां ३१ मार्च तक रहे। वहां से वह कलकत्ते चले गए और मैं हरद्वार का कुम्भ देखने चला आया।

डेलांग की एक घटना स्मरणीय है। जगन्नाथजी का मंदिर वहां से नजदीक ही था। बापू ने कहा कि वहां आकर पुरी तो देखनी ही चाहिए। पूज्य बा, मणिलालभाई, कनु गांधी, महादेवभाई की पत्नी दुर्गा बहन और मैं पुरी देखने गए। जिस मंदिर में हरिजन न जाते हों, उसमें बापूजी नहीं जाते थे। पुरी का मंदिर हरिजनों के लिए बंद था। मैंने, मणिलालभाई और कनु ने मंदिर में जाने से इन्कार कर दिया। बा थीं भोली-भाली और परम श्रद्धालु। वह दुर्गा बहन आदि के साथ दर्शन करने अंदर चली गईं। वापसी पर बापू ने सब हाल पूछा। बा से मंदिर में जाने की बात सुनकर उन्हें बड़ा आघात पहुंचा। उनके खून का दबाव और भी बढ़ गया। हम सब परेशान हो उठे। बा मुझसे कहने लगीं कि तूने मुझे अंदर जाने से रोका क्यों नहीं ? मैं तो घबरा गया, मगर बापू ने मेरी ओर से कहा कि यह तुम्हें कैसे रोकता ! यह उसकी मर्यादा से बाहर की बात थी। इस घटना के बाद मैंने भी व्रत लिया कि जिस मंदिर में हरिजन प्रवेश न कर सकते हों उसमें मैं भी प्रवेश नहीं करूंगा। मैंने कई बार देखा है कि जो बात मैं

हरिजन-उद्योगशाला के प्रार्थना-मंदिर के उद्घाटन के समय

व्यक्त नहीं कर सकता था, मगर जो मेरे मन में होती थी, उसे बापू स्वयं ही कह दिया करते थे और मुझे संकट से बचा लेते थे। अपने संकोची स्वभाव के कारण मैं उनसे बात करते भी घबराया करता था। मुझे जो कुछ कहना होता था उसे उन्हें लिखकर दे देता था और वह मेरे मन के भाव को तुरंत ही समझ लेते थे। कई बार बिना कुछ बताये ही वेह मेरे मन की बात जान लेते थे और मैं चकित रह जाता था। सच कहूं तो मैं अपने को इतना नहीं जानता था, जितना वह मुझे जानते थे।

२२ जुलाई, १९३८ को मुझे धरना देने के अपराध में १५ दिन की सजा मिली। जेल से आकर कार्यवश मुझे शिमले जाना पड़ा। इस बार मेरे जेल जाने से मां को इतना आघात पहुंचा कि २६ अगस्त को जब मैं शिमले में ही था उनका देहांत हो गया। ३ सितम्बर को बापूजी ने सेवाग्राम से मुझे सांत्वना का निम्नलिखित पत्र लिखा :

"मेरा मन तो तुम्हारे पास ही रहा है। मां गई और तुम उनके नजदीक नहीं थे। उसका दुःख तो अवश्य रहेगा, लेकिन हम मौत को मौत कब मानते हैं ? मौत एक बड़ा परिवर्तन है। बाकी शरीर का परिवर्तन तो नित्य होता है। जिस जीव के साथ संबंध था, उसने तो स्थानांतर ही किया है; इसमें शोक क्या ? यहां आना चाहो तो आ सकते हो। थोड़े दिनों में मुझे दिल्ली आना होगा, इसलिए खर्च से बचना है तो बचो। यहां की हवा भी अच्छी नहीं है।"

२० सितम्बर को बापूजी दिल्ली आए और हरिजन-निवास में ठहरे। अपनी मां की यादगार बनवाने के लिए मैंने हरिजन-निवास में एक मंदिर स्थापित करने की अनुमति उनसे ले ली थी।

२५ तारीख को उन्होंने उसकी आधारशिला रखी। उन दिनों बापू मौन रहते थे और लिखकर बातें किया करते थे। इसलिए उन्होंने अपना प्रवचन भी लिखकर ही दिया, जो इस प्रकार था :

"मुझे खेद है कि इस मौके पर मैं बोल नहीं सकता। कई बरसों से मेरा अभिप्राय बन गया है, मृत्यु के बाद धनिक लोग काफी खर्च निकम्मा करते हैं, जिसमें न कुछ उपयोग रहता है, न धर्म।

इसलिए आज का अवसर मुझे प्रिय लगता है। जानकीदेवी पुण्यात्मा थीं। उनका स्वर्गवास थोड़े ही दिन पहले हुआ। उनका परिवार बड़ा और प्रसिद्ध है। सब भाइयों ने मिलकर यही निश्चय किया कि जानकीदेवी की पुण्यस्मृति में कुछ हरिजन-सेवा का ही कार्य किया जाय और उन्होंने निर्णय किया कि इस संस्था में संचालकों की सम्मति से एक प्रार्थना-मंदिर बनाया जाय। इस मंदिर की नींव रखने का शुभ कार्य मेरे सुपुर्द किया गया है। आपके समक्ष मैं नींव डालता हूं और आशा करता हूं कि इस मंदिर से इस संस्था के विद्यार्थियों को लाभ होगा और दूसरे सज्जन भी इसी तरह प्रियजनों के स्वर्गवास निमित्त हरिजन-सेवा करेंगे।"

२० सितम्बर से ३ अक्तूबर तक बापू हरिजन-निवास में रहे। इन दिनों कार्यसमिति और महासमिति की बैठकें हो रही थीं। यूरोप में लड़ाई छिड़ने की तैयारियां हो रही थीं और कार्यसमिति के सामने यही प्रश्न था कि यदि लड़ाई सचमुच छिड़ गई तो भारत क्या करे। उन दिनों बापूजी का स्वास्थ्य अच्छा रहा। दिल्ली का जलवायु उनको अनुकूल था। खून का दबाव न बढ़ने पाया। सुबह वह कमरे की छत पर घूमा करते और शाम को उस चबूतरे तक जहां १९११ में दरबार हुआ था, मोटर में जाया करते, वहां से पैदल वापस आया करते थे। प्रार्थना में दर्शकों की काफी भीड़ रहती थी। कार्यसमिति के कई सदस्य भी हरिजन-निवास में ही ठहरे हुए थे—सुभाषबाबू, राजेन्द्रबाबू, खानसाहब, जमनालालजी, हरेकृष्ण मेहताब, शंकरराव देव आदि। राजाजी और विश्वनाथदास भी वहीं थे। बापूजी का समय काफी व्यस्त रहता था, यद्यपि वह मौन रहते थे।

मौन की महिमा बापूजी जानते थे। एक बार उन्होंने कहा था कि यदि मौन सिद्ध हो जाय तो फिर मनुष्य अपने संकल्पमात्र से दूसरों के मनों में परिवर्तन कर सकता है, उसे बोलने या भाषण करने की जरूरत ही नहीं रह जाती। शाम की प्रार्थना में शहर से और आसपास के देहातों से काफी लोग आते थे। एक दिन एक अंधा बापू के दर्शन करने भीड़ में

से निकलकर उनके पास जाने लगा। स्वयंसेवकों ने उसे रोकना चाहा। बापू को यह सहन न हुआ, स्वयं आगे बढ़कर उन्होंने अंधे को अपनी छाती से लगा लिया और स्वयंसेवकों को इशारे से दूर हट जाने को कहा।

: ८ :

सीमाप्रांत की ऐतिहासिक यात्रा

४ अक्तूबर को बापूजी अपनी पार्टी के साथ सीमाप्रांत का दौरा करने निकले। डा० सुशीला, प्यारेलालजी, कनु गांधी और अमतुस्सलाम बहन पार्टी में थे। दिल्ली से मैं साथ हो लिया। महादेवभाई बीमार थे, वह और बा दिल्ली में ही रहे।

६ से ८ अक्तूबर तक बापू पेशावर में रहे। ९ अक्तूबर को वह उत्तमनजाई गए, जहां खानसाहब का घर है। वहां आकर बापूजी खुदाई खिदमतगारों से बातें करने को थोड़े समय के लिए मौन खोल लिया करते थे। एक दिन रात को क्या देखते हैं कि खुदाई खिदमतगार बंदूकें लिए पहरा दे रहे हैं। बापू इसे कब सहन कर सकते थे? दूसरे दिन सुबह ही उन्होंने खानसाहब से कहा कि ये लोग जिन्होंने अहिंसा का व्रत लिया है, बंदूकें कैसे ले सकते हैं? अपनी यात्रा में बापूजी खुदाई खिदमतगारों को यही समझाते रहे कि अहिंसा क्या है।

१६ अक्तूबर से उनकी यात्रा आरम्भ हुई। उत्तमनजाई से पेशावर आकर वह नौशेरा गए और वहां से मरदान, सवाबी होकर २१ अक्तूबर को कोहाट पहुंचे। यह अफरीदियों का इलाका था। हरएक के पास बंदूक थी। कोहाट से हंगो और फिर वहांसे कोहाट लौटकर वह बन्नू गए। बन्नू से वह लक्की मरवत गए और २७ को डेरा इस्माइलखां पहुंचे। वहां-से २ नवम्बर को वह वापस पेशावर आए। ६ नवम्बर को वह पेशावर से ऐबटाबाद के लिए निकले और ९ नवम्बर को वहां से तक्षशिला को रवाना हो गए। उसी दिन अपना दौरा खत्म करके बापू वर्धा चले गए।

में रास्ते में एक मित्र से मिलने वजीराबाद रुक गया था।

सीमाप्रांत का यह दौरा एक ऐतिहासिक दौरा था। उसमें बापू ने हिंसक पठानों को अहिंसा का उपदेश दिया और पुश्तहापुश्त के वैरभाव से बचने का रास्ता बताया।

इसके चार मास बाद १९३९ के मार्च मास में मैं बापूजी के पास राजकोट गया। उन दिनों राजकोट का झगड़ा चल रहा था। पूज्य बा गिरफ्तार हो चुकी थीं। सेवाग्राम से बापूजी वहां आए हुए थे और ३ मार्च को उन्होंने अनिश्चित काल के लिए उपवास शुरू कर दिया था। देवदासजी और दूसरे साथियों की सलाह से मैं उपवास के दूसरे ही दिन राजकोट पहुंच गया था। बापूजी वहां राष्ट्रीयशाला में ठहरे हुए थे। उनको मितली शुरू हो गई थी। कमजोर तो वह थे ही।

इस उपवास में बापूजी हर रोज सुबह पूरी गीता और शाम को रामायण में से सुना करते थे। ७ मार्च को वाइसराय का संतोषजनक निर्णय आ गया और उसी दिन २ बजकर २० मिनट पर बापू ने उपवास खोल दिया। उन्हीं दिनों त्रिपुरी में कांग्रेस का अधिवेशन चल रहा था। फोन पर वहां से समाचार मिलते रहते थे।

१३ मार्च को बापूजी राजकोट से दिल्ली के लिए रवाना हुए और १५ को छावनी के स्टेशन पर उतरे। वह कमजोर हो गए थे और इस बार बिड़ला-भवन में ठहरे। वहां ठहरने का उनका यह पहला अवसर था। दिल्ली पहुंचकर उसी दिन बापूजी वाइसराय से मिले और उसके बाद दिल्ली जेल में शाही कैदियों से मिलने गए। १८ मार्च को उन्होंने बिड़ला-मंदिर का उद्‌घाटन किया। २३ मार्च को वह इलाहाबाद चले गए और २५ मार्च को दिल्ली लौट आए। वापस आकर कई दिनों तक बापूजी ने समाजवादी दल के कार्यकर्त्ताओं से बातें कीं और उन्हें अपने विचार समझाये। ७ अप्रैल को वह राजकोट वापस चले गए।

उसी वर्ष अगस्त मास में मैं दक्षिण की यात्रा को गया। १० अगस्त को मैं बापूजी से सेवाग्राम में मिला। उन दिनों वहां कांग्रेस कार्य-समिति की बैठक चल रही थी और बड़े महत्त्व के प्रश्नों पर विचार हो रहा

बापू : राजकोट में उपवास के समय

था। ३ सितम्बर को दूसरे महायुद्ध की घोषणा हो गई और बापूजी को उसी मास ४ और २६ तारीखों को और फिर १ अक्तूबर को वाइसराय से मिलने दिल्ली आना पड़ा। ६ अक्तूबर को वह वर्धा लौट गए।

१ नवम्बर को बापूजी फिर दिल्ली आए और बिड़ला-भवन में ठहरे। २ नवम्बर को उन्होंने हरिजन-निवास में उस प्रार्थना-मंदिर का उद्घाटन किया, जिसका शिलान्यास उन्होंने २५ सितम्बर, १९३८ को किया था। इस अवसर पर प्रवचन करते हुए उन्होंने कहा :

"इस प्रार्थना-मंदिर का उद्घाटन आज मेरे हाथ से करवाया जा रहा है। मैं चाहता हूं कि इसके द्वारा हमारी धार्मिक भावना बढ़े। प्रार्थना में हम जितना समय दे सकें, अच्छा है, यहां तक कि अन्त में स्वयं प्रार्थना-मय बन जायं। यह मंदिर यदि धार्मिक भावना बढ़ायेगा तो जिन भाइयों ने इसके बनवाने में योग दिया है, उनकी भक्ति सफल होगी। चांदीवालों की स्वर्गीय माता श्री जानकीदेवी की आत्मा को शांति मिले, हम सबकी यह सद्भावना सफल हो।"

फरवरी सन् १९४० में मलिकंदा में गांधी-सेवा-संघ का अधिवेशन था। बापूजी शांतिनिकेतन होकर वहां जा रहे थे। दिल्ली से मैं भी पहुंच गया और १७ फरवरी को मैंने उनके साथ शांतिनिकेतन देखा। वहां बापू और गुरुदेव का मिलन देखने योग्य था। प्राचीन हिंदू संस्कृति के अनुसार वहां बापू का सत्कार आम्रकुंज में किया गया था। वहां बापू दो रोज ठहरे और २० ता० को मलिकंदा पहुंच गये। तब तक सुभाषबाबू कांग्रेस से अलग हो चुके थे। रास्ते भर हम 'एडहोक कमेटी नहीं चाहिए' यही नारे सुनते गये।

मलिकंदा ढाका जिले में पद्मा नदी के किनारे एक गांव है। ढाका यहां से बीस मील है। इस जिले में मुस्लिम आबादी अधिक है। प्रफुल्लबाबू का यह जन्मस्थान है। यहां भोजन का सब सामान ग्राम-उद्योग संघ का था। छोटी-सी प्रदर्शनी भी की गई थी। सभा में जाते समय सरदार पटेल पर चप्पल फेंकने की कोशिश की गई थी, मगर वह उनको लगी नहीं।

मार्च १९४० में रामगढ़ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। प्रदर्शनी

के प्रबन्ध में सहयोग देने के लिए मैं कलकत्ते से रामगढ़ चला गया।

१४ मार्च को बापूजी रामगढ़ आये। १९ को अधिवेशन था। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के लिए ३ बजे का समय रखा गया था। मैं वहां डाकखाने में खड़ा पत्र डाल रहा था। सामने ही कांग्रेस-पंडाल का द्वार दीख रहा था। एकाएक वर्षा आरंभ हुई और इतने जोर से पानी आया कि आध घंटे में वहां घुटनों ऊंचा पानी बहने लगा। थोड़ी देर बाद तो चारों ओर जल-ही-जल दीखने लगा। बड़ी कठिनाई से मैं बापूजी के पास पहुंच पाया। वह बरामदे में टहल रहे थे। उनकी कुटिया सारी-की-सारी चू रही थी। उसमें हमने जहां-तहां रोक लगाई। उनके तख्त के ऊपर चादर बांधी। वर्षा से बचने को हम उनके तख्त के नीचे घुस गये और तब कहीं रात को सो सके।

दूसरे रोज सुबह ही बापूजी ने वहां झंडा चौक में भाषण किया। खड़े-खड़े सब प्रस्ताव पास हुए और रात ही की गाड़ी से बापूजी वर्धा लौट गये। मैं दिल्ली चला आया। इस वर्ष इस कदर भीड़ आई थी कि ठहरने को कहीं स्थान न था। सब कोई परेशान हो गये थे। कहते हैं, वहां पचासों वर्ष में ऐसी वर्षा कभी नहीं हुई थी।

: ६ :

व्यक्तिगत सत्याग्रह

मई का महीना आया और व्यक्तिगत सत्याग्रह की तैयारियां शुरू हो गईं। मैंने सत्याग्रह का प्रतिज्ञापत्र भर कर बापूजी के पास भेजा। दिल्ली से प्रतिज्ञापत्र भरवाकर भेजने का काम आरम्भ में उन्होंने मुझे सौंपा था। वह व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए बहुत छानबीन करके सत्याग्रहियों को लेना चाहते थे, इसलिए मैंने देहातों का दौरा शुरू किया और दिल्ली में सत्याग्रह-कैम्प खुल गया।

२८ जून को बापूजी महादेवभाई, प्यारेलाल आदि के साथ

वर्धा से दिल्ली आये। दिन-भर बिड़ला-भवन में रहकर रात को वह शिमला चले गये। वहां से वह ३० जून को लौटे और इस वार राजपुर रोड पर शौकत अंसारी की कोठी पर ठहरे। वह शाम को ही वर्धा जाने वाले थे, मगर ३ जुलाई को कार्यसमिति की वैठक होने का निश्चय हो गया, इसलिए उन्हें ठहरना पड़ा।

दिल्ली में एक चरखा-क्लब कायम हुआ था। बापूजी ने उसके सदस्यों के साथ वैठकर काता और क्लब में प्रवचन किया। उसी रात वह बिड़ला-भवन चले गये। ७ तारीख तक कार्यसमिति की वैठक चली। उसी शाम को वह वर्धा लौट गये।

२६ सितम्बर को बापूजी फिर दिल्ली आये और पहले की तरह दिन-भर बिड़ला-भवन ठहरकर रात की गाड़ी से शिमला चले गये। महादेवभाई और कनु साथ थे। दिन में चरखा-क्लब के सदस्यों के साथ सामूहिक कताई हुई। उस दिन बापूजी ने खादी की हुंडियां भी वेचीं।

३० सितम्बर को बापूजी शिमला से मोटर में चलने वाले थे। देवदासजी ने मुझे दिल्ली से अम्बाले भेजा ताकि मैं बापूजी को आराम से लिवा लाऊं। रात को १ वजकर ४० मिनट पर उनकी मोटर दिखाई दी। उन्होंने अपनी मोटर रोक ली और मुझे देखकर कहा, "अच्छा, आगया? अव मैं निश्चिंत हूं।" आह, कितना विश्वास था उन्हें मुझपर!

मैं उनकी मोटर में वैठ गया और वह सो गये। सवेरे ५॥ वजे हम बिड़ला-भवन पहुंचे। महादेवभाई दूसरी मोटर में थे। वह अभी तक पहुंची नहीं थी, इसलिए बापूजी को चिन्ता हो गई। उनका ड्राइवर रास्ता भूलकर दूसरी सड़क पर चला गया था। वह कोई घंटे भर बाद बिड़ला-भवन पहुंचे, तव कहीं जाकर बापू की चिन्ता दूर हुई। उसी शाम, पहली अक्तूवर को, बापू वर्धा चले गये।

१७ अक्तूवर, १९४० से बापूजीने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू करवा दिया। उनके आदेशानुसार सवसे पहले श्री विनोवा भावे ने पौनार ग्राम में सत्याग्रह किया। वह २१ ता० को गिरफ्तार कर लिये गये। उनके वाद पं० जवाहरलाल नेहरू की वारी थी, मगर वह पहले ही गिरफ्तार

किये जा चुके थे। इसलिए उनके बाद बापूजी ने एक साधारण व्यक्ति ब्रह्मदत्त से सत्याग्रह करवाया।

५ नवम्बर को मैं उनसे मिलने वर्धा गया। सुना था कि वह उपवास शुरू करने वाले हैं। मगर वहां पहुंचकर पता चला कि उनका ऐसा कोई विचार नहीं था। दिल्ली के सत्याग्रह के सम्बन्ध में बापूजी से बातें हुईं। वह चाहते थे कि दिल्ली में श्रीगणेश मैं करूं, लेकिन मैंने कहा कि आसफअली साहब हमारी प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान हैं, उन्हें ही शुरू करना चाहिए। बापूजी को भी यह विचार पसंद आया और मैं उनका आशीर्वाद लेकर १० नवम्बर को दिल्ली लौट आया।

मेरे सत्याग्रह के लिए ६ जनवरी, १९४१ का दिन निश्चित किया गया था, किन्तु मैं ३१ दिसम्बर को ही गिरफ्तार कर लिया गया और दो भाषणों के अभियोग में मुझे दो वर्ष की सजा हो गई। मेरा यह समय पंजाब के गुजरात जेल व लाहौर जेल में बीता। इस बीच बापू क्रिप्स मिशन के सम्बन्ध में कई बार दिल्ली आये।

जेल में बापूजी के पत्र आते रहते थे। वर्ष भर बाद उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया था। बहुत-से साथी छूट भी गये थे मगर मुझे रिहा नहीं किया जा रहा था; क्योंकि इस बार ऐसा माना जाने लगा था कि जो गांधीजी के अधिक निकट रहा हो वही अधिक दंडनीय है।

इस वर्ष गुजरात जेल में हमने गांधी-जयंती बड़ी धूमधाम से मनाई और १५ दिन में ४,१३,५४८ गज सूत कातकर बापूजी को भेंट-स्वरूप भेजा। उनके पहनने के लिए मैंने अपने हाथ के सूत की धोती भिजवाई थी, उसे पाकर बापूजी ने लिखा, "तुम्हारे हाथ की धोती पहनी है; खुश रहो।"

: १० :

दो आहुतियाँ

मैं ९ मई, १९४२ को रिहा होकर १४ जून को वापूजी से मिलने सेवाग्राम गया। इस वार १॥ वर्ष के लम्बे अर्से के वाद उनके दर्शन कर पाया था। वहां जाकर वुखार आने लगा। सेवाग्राम में कार्यसमिति की वैठक होने वाली थी और १९४२ के आंदोलन की भी तैयारियां हो रही थीं। आश्रम आगन्तुकों से भरा हुआ था। दिल्ली की सत्यवती वहन रिहा होकर वापू से मिलने आई थीं। ६ जुलाई को उनके साथ मैं दिल्ली वापस आ गया।

७ अगस्त से वम्वई में कांग्रेस महासमिति का ऐतिहासिक अधिवेशन होने वाला था। उसमें शरीक होने मैं ४ अगस्त को वम्वई चला गया। वापूजी वहां विड़ला-भवन में ठहरे थे। उन्हें सव संदेश सुनाया। आठ की रात को 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पास हुआ। उस दिन का वापू का भाषण कौन भूल सकता है? उन्होंने भारत माता की स्वतंत्रता के इस अंतिम युद्ध में हर तवके के व्यक्ति से हाथ वंटाने की अपील की और जनता को सत्य तथा अहिंसा पर दृढ़ रहकर अपने देशको आजाद कराने के लिए ललकारा। उस रात वह वहुत थक गये थे और वहुत देर से सो पाये। ९ अगस्त को सुवह ही उनकी गिरफ्तारी हो गई और कई वर्षों के लिए वह हमसे जुदा हो गये। उसी दिन मैं दिल्ली के लिए रवाना हो गया और वहां २० अगस्त को वहन सत्यवतीजी के साथ अनिश्चित काल के लिए नजरवन्द कर दिया गया। इस वार न तो वापूजी से पत्र-व्यवहार करने का कोई साधन था, न उनके सही समाचार पाने का। एकाएक यह शोक-समाचार मिला कि १५ अगस्त को आगाखां महल में महादेवभाई का देहान्त हो गया।

महादेवभाई का स्वास्थ्य यों तो कुछ अर्से से ठीक नहीं रहता था, मगर इस तरह उनकी अचानक मृत्यु हो जायगी यह किसीको कैसे खयाल

आ सकता था। कितनों को तो ऐसा लगा कि सरकार ने उन्हें जहर दे दिया है। उनकी मृत्यु से बापू को कितना बड़ा आघात पहुंचा होगा इसकी हम कल्पना ही नहीं कर सकते। उनके जाने से जो क्षति हुई थी वह पूरी हो ही नहीं सकती थी। बापू को वह जितना पहचानते थे, उतना और कोई नहीं पहचान सका। आज यदि वह जीवित होते तो बापू के संबंध में न जाने क्या-क्या बातें बताते, जो अब प्रकाश में नहीं आ सकेंगी।

भारत में इस अंतिम स्वतंत्रता-संग्राम में बापूजी ने अपने एक प्रिय पुत्र की जो महान् आहुति दी थी वह निष्फल कैसे जा सकती थी? ठीक पांच वर्ष बाद उसी तारीख को देश की गुलामी की बेड़ियां कट गईं।

फरवरी, १९४३ का महीना था। हम दिल्ली के कितने ही कैदी मुलतान जेल से अंबाला जेल पहुंचाये जा चुके थे। एकाएक १० फरवरी को खबर आई कि आगाखां महल में बापूजी ने २१ दिन का उपवास शुरू कर दिया है। समाचार सुनकर सब सन्न रह गए। मगर करते क्या, लाचार थे। मैंने बहुत कोशिश की कि सेवा करने को मुझे बापूजी के पास भेज दिया जाय, मगर मेरी अर्जी मंजूर नहीं हुई। बाद में सुना कि आगाखां महल में भी मेरे बुलाने की बात चली थी, मगर इन्कारी हो गई थी। जेल के वे इक्कीस दिन बड़ी परेशानी में कटे। एक दिन तो बापू के लिए बड़ा ही भयानक समाचार आ गया था। सब प्रार्थना करते रहे। आखिर ३ मार्च को उनका यह महान् यज्ञ समाप्त हुआ। हम दिल्ली वाले उसी दिन फीरोजपुर जेल में भेज दिये गए थे।

अब हमें समाचार-पत्र मिलने लगे थे और पत्र लिखने की भी सुविधा प्राप्त हो गई थी। उन दिनों आगाखां महल में पूज्य बा बीमार थीं। उनकी दशा दिन-पर-दिन गिरती जा रही थी और आखिर २२ फरवरी को वह अशुभ दिन भी आया जब हमें उनके उठ जाने का समाचार सुनना पड़ा।

यह दूसरी आहुति थी जो बापूजी ने इस बार की जेल-यात्रा में देश की स्वतंत्रता के लिए दी।

पूज्य बापू की ६२ वर्ष की चिरसंगिनी थीं वह। १३ वर्ष की आयु से ही बापू के साथ रहती आई थीं और उनकी हर साधना में उन्होंने साथ दिया था। इस बार जेल जाते समय ही उन्होंने कह दिया था कि मैं वहां से जिन्दा नहीं लौटूंगी। महादेवभाई को वह पुत्र के समान प्यार करती थीं। उनके जाने से बा को बड़ा आघात पहुंचा था। वह सदा बापूजी के लिए भी चिंतित रहती थीं। बापूजी तो अपनी जान सदा हथेली पर लिये घूमते ही थे। इसलिए बा का हृदय उनके लिए सदा धड़कता रहता था। उनके उपवास के दिनों में तो बा की चिंता का पार ही न रहता था, न जाने उनका सुहाग-दीप कब बुझ जाय! तलवार की धार पर वह अपना जीवन टिकाये हुए थीं। उनकी ईश्वर से यही प्रार्थना रहती थी कि उन्हें बापू का वियोग सहना न पड़े। शायद इसी कारण प्रभु ने बापू से चार वर्ष पहले ही उन्हें अपने पास बुला लिया।

बा सदा प्रातःस्मरणीय रहेंगी। इस जमाने में उन जैसी साध्वी और पतिव्रता स्त्री मिलना बहुत कठिन है। चिता की प्रचंड अग्नि उनके सुहाग की कांच की चूड़ियां तोड़ न सकी। वे फूल चुनते समय ज्यों-की-त्यों निकल आईं।

६ मई, १९४४ की सुबह ८ बजे बापूजी एकाएक रिहा कर दिये गए। उस दिन हमारे जेल में खूब खुशियां मनाई गईं।

बा की बीमारी के समय भी मैंने बहुत चेष्टा की थी कि मुझे उनकी सेवा के लिए आगाखां महल में भेज दिया जाय, मगर मुझे सफलता नहीं मिली थी और मेरे बजाय प्रभावती बहन भेज दी गईं।

हर २२ फरवरी को बापूजी कस्तूरबा-दिवस मनाते थे। उस दिन वह रोज से आधा घंटा पहले उठते थे और सुबह की प्रार्थना के साथ पूरी गीता का पारायण होता था।

करीब तीन वर्ष के कारावास के बाद मैं १४ जुलाई, १९४५ को जेल से रिहा किया गया। बाहर आकर पता लगा कि बापूजी शिमला गये

हुए हैं और १७ तारीख को दिल्ली आयेंगे। उनसे मिले करीब तीन साल हो चुके थे। १७ को वह स्पेशल ट्रेन से दिल्ली आये। मैं उन्हें निजामुद्दीन स्टेशन पर लेने गया। सुबह के चार बजे थे। बापू सो रहे थे। मैंने लपककर उनके चरण छुए और फिर उनका सामान उतरवाया। साढ़े चार बजे वह बिड़ला-भवन पहुंच गये, जहां ५॥ बजे प्रार्थना हुई। दिन में बापू सत्यवती-जी को देखने किंग्सवे टी० बी० अस्पताल गये, जहां वह अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई थीं। शाम को स्पेशल ट्रेन से वह वर्धा लौट गये। उस दिन उनसे बातें करने का समय ही न मिला।

२१ सितम्बर, १९४५ को बम्बई में कांग्रेस महासमिति की बैठक थी। बापूजी उसमें शरीक होने वहां गये थे और बिड़ला-भवन में वहां ठहरे थे। मैं उनके दर्शन करने वहां गया। तीन वर्ष पूर्व ९ अगस्त की घटना मुझे याद आ गई, जब मैंने पूज्य बापूजी को वहां से जेल के लिए विदा किया था और पूज्य बा तथा महादेवभाई के अंतिम दर्शन किये थे। अब न तो बा थीं, न महादेवभाई ही थे। बापू भी काफी कमजोर हो गये थे। उस दिन उनको बुखार था। अधिवेशन समाप्त होते ही वह पूना चले गये और मुझे वहां आने को कह गये। पूना में वह डा० दिनशा मेहता के सेनोटोरियम में ठहरे थे। मैं २९ सितम्बर को वहां जाकर उनसे मिला। उन दिनों शाम की प्रार्थना के बाद बापूजी नित्य प्रवचन किया करते थे। यह सिलसिला उन्होंने इस बार जेल से आकर शुरू किया था, जो मृत्यु के एक दिन पूर्व तक बराबर जारी रहा।

पूना में मैंने आगाखां महल में आकर पूज्य बा और महादेवभाई की समाधियों के दर्शन किये। आगाखां महल एक पुण्य-स्थान बन गया है।

: ११ :

हरिजन-बस्ती में

१९४६ शुरू हुआ और हिन्द के राजनैतिक क्षेत्र में भारी परिवर्तनों की आशाएं दिखाई देने लगीं। इंग्लैंड में शासन की बागडोर मजदूर दल

के हाथ में आ चुकी थी और वहां से मंत्रिमंडल मिशन के आने की बात चल रही थी। तभी यह समाचार भी आया कि बापूजी दिल्ली आने वाले हैं और उन्होंने निश्चय कर लिया है कि अब सेवाग्राम से जहां कहीं भी जायेंगे वहां भंगी-वस्ती में ठहरा करेंगे। जब वह बम्बई गए थे तो वहां भी उन्होंने ऐसा ही किया था। मैंने उन्हें लिखा कि यदि आप दिल्ली में भी भंगी-वस्ती में ठहरने का विचार कर रहे हों तो यहां वैसा ही प्रबंध करूं, उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें ऐसा करना पसंद होगा।

दिल्ली की भंगी-वस्तियां मानो नरक-कुंड थीं। बापू को लिख तो दिया, लेकिन सवाल यह था कि उनको ठहराया कहां जाय। नायरजी ने वाल्मीकि मंदिर का सुझाव दिया। मैंने उसे जाकर देखा। रविवार का दिन था। सैकड़ों नौजवान वहां जमा थे और सभा-सी हो रही थी। सब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य थे। मैंने इस संघ का नाम उस दिन पहली बार सुना।

मंदिर के प्रबंध-कर्त्ताओं से मिलकर मैंने बापूजी को वहां ठहराने का निश्चय किया, क्योंकि वह स्थान उनके लिए हर प्रकार से उपयुक्त था। बिड़लाजी से मिलकर मैंने वहांकी व्यवस्था कराने की प्रार्थना की और तैयारियां होने लगीं।

वाल्मीकि मंदिर नई दिल्ली में रीडिंग रोड पर हरिजन-वस्ती के बिल्कुल निकट है। उसे हरिजनों ने चन्दा जमा करके बनवाया है और उसके साथ धर्मशाला व पाठशाला के लिए कमरे भी खड़े करवाए हैं। इसी स्थान पर बापूजी तथा उनकी पार्टी को ठहराने का बड़े पैमाने पर प्रबंध किया गया। कुछ छप्पर बनवाए गए और चंद तंबू शामियाने खड़े कराए गए। कैम्प एक अच्छी खासी छावनी प्रतीत होने लगा। प्रबंध करने के लिए सेवादल के स्वयंसेवक बुलाए गए थे। इनमें से क्लौथ मिल के स्वयं-सेवकों ने श्री शारदासिंह और पंडित रामप्रताप के नीचे रहकर बापूजी की बड़ी सेवा की।

उस बात को भी अब दो वर्ष हो चुके हैं। इन दो वर्षों में क्या-क्या हो गया! भारत का तो नक्शा ही बदल गया। इस बार मुझे उनके

निकट रहने का अधिक अवसर मिला, कारण; कैम्प की देख-भाल मेरे ही सुपुर्द थी।

पहली अप्रैल, १९४६ को स्पेशल ट्रेन से बापूजी बम्बई से दिल्ली पहुंचे और वाल्मीकि मंदिर में उतरे। अम्बेडकर पार्टी के कुछ लोगों ने वहां आकर काले झंडे दिखाए और पत्थर भी फेंके।

उसी दिन से दिल्ली में बापूजी की शाम की सामूहिक प्रार्थना होनी शुरू हुई। पहले दिन सर स्टैफर्ड क्रिप्स भी प्रार्थना में शरीक हुए। वह उन दिनों ब्रिटिश मंत्रिमंडल मिशन के एक सदस्य के रूप में दिल्ली आए हुए थे।

सुबह की प्रार्थना में बापूजी ने बाहर के लोगों को शरीक होने की मनाई करदी थी। शाम की प्रार्थना में दूसरे ही दिन इतनी भीड़ बढ़ी कि तीसरे दिन से रामलीला के मैदान में प्रार्थना का प्रबंध करना पड़ा। प्रार्थना के बाद इन दिनों बापू खास तौर से हवा, पानी और मिट्टी के प्राकृतिक इलाजों पर प्रवचन किया करते थे।

सुबह के समय बापूजी मंदिर के मैदान में घूमा करते थे। वहां के अहाते में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कैम्प भी था। उसके कितने ही सदस्य वहीं एक कमरे में रहा करते थे। सुबह ही कैम्प के पास के मैदान में उनकी शाखा लगती थी, कवायद होती थी और भगवा झंडे की सलामी होती थी। एक दिन टहलते हुए बापूजी ने उनको देखा और पूछा कि ये लोग कौन हैं? क्या कांग्रेस के स्वयंसेवक हैं? मैंने बताया कि संघ के सदस्य हैं और इस मंदिर में ही रहते हैं। तब उन्होंने मुझे संघ का इतिहास बताया और कहा कि उसका आदि संचालक तो एक शुभ-भावनाओं वाला व्यक्ति था, किन्तु अब यह संघ खुफिया तौर से काम करने लगा है और इसका तरीका बदल गया है। संघवाले अब हिंसा में विश्वास रखते हैं।

बापूजी को इनका कच्चा चिट्ठा मालूम है, यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ। उसी दिन से थत्ते ने आकर परेशान करना शुरू कर दिया। और भी कई प्रकार के आदमी वहां आते रहते थे, मगर हम लोगों ने इन बातों की ओर कभी विशेष ध्यान ही नहीं दिया। अब जब सब बातों का

ल मिलाता हूं तो हाथ मलकर रह जाता हूं कि मेरी बुद्धि पर यह परदा
यों पड़ गया था ।

केबिनेट मिशन से हो रही चर्चा के कारण इस बार बापूजी के कैम्प
में काफी चहल-पहल रहती थी। उन्हें बार-बार वाइसराय और केबिनेट
मिशन वालों से मिलने जाना पड़ता था। किसी-किसी दिन वे लोग बापूजी
से मिलने कैम्प में आते थे। स्थिति दिन-पर-दिन गम्भीर होती जा रही
थी; कैम्प में किसी दिन आशा की किरणें चमक उठती थीं तो किसी दिन
निराशा की घटाएं छा जाती थीं। इस प्रकार अप्रैल का सारा महीना
बातों में ही बीत गया। गर्मी बहुत बढ़ गई थी इसलिए यह तय पाया कि
बाकी बातें शिमले चलकर हों। १ मई को बापूजी अपनी पार्टी के साथ
शिमला गए। मैं भी साथ गया। वह जाना तो अकेले ही चाहते थे,
मगर उन्होंने साथियों को स्वयं अपने लिए निश्चय करने की स्वतंत्रता दे
दी थी। अधिकांश साथियों ने उनके साथ जाने का निर्णय किया। यह
उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगा, वह तो केवल राम पर भरोसा रखकर
उसीके सहारे अकेले रहना चाहते थे। वहां पहुंचकर वह कहने लगे कि
मैं दूसरों से तो कहता हूं कि राम पर भरोसा रखो, मगर अपने साथ
कितने आदमी रखता हूं। अब मैं अकेला रहकर देखना चाहता हूं, अनासक्त
बनना चाहता हूं। जहांतक हो सके अपना काम स्वयं करना चाहता हूं।
यहां आकर मेरी भारी परख हो रही है। चारों ओर अविश्वास आदि
के विकार फैल रहे हैं। मैं सब कुछ राम पर भरोसा रखकर देखना
चाहता हूं, इसलिए साथी वापस चले जायं। मुझसे वह बोले—
"चूंकि तुम अपना स्वास्थ्य सुधारने आए हो, इसलिए ठहर सकते हो।"
इस प्रकार उन्होंने सब साथियों को दिल्ली लौटा दिया और प्यारेलालजी
तक को शिमले में न रहने दिया।

शिमले में १५ दिन ठहर कर १५ मई को वह दिल्ली लौट
आए। वहां मंत्रिमंडल-मिशन वालों के साथ उनकी मुलाकातें बराबर होती
रहती थीं, समझौते की झलक भी दिखाई देने लगी थी; मगर वह न
होना था, न हो सका।

शिमले में भी बापूजी प्रार्थना के बाद प्रतिदिन प्रवचन करते थे उनकी देख-रेख भोजन आदि के प्रबंध की जिम्मेदारी मेरे ऊपर थी हमारे साथ सरदार पटेल और बादशाह खान भी ठहरे हुए थे। बादशा खान को बापूजी पर कितना भरोसा और प्रेम था यह जो उनके साथ रहे वही बता सकते हैं। बापूजी से पूछे बिना और उनकी सलाह लिए बिन वह कोई काम नहीं करते थे। बापूजी की मृत्यु से उनको कितना सदम पहुंचा होगा इसका अनुमान लगाने की सामर्थ्य किसीमें नहीं है। पंडितज और मौलाना साहब दूसरी कोठियों में ठहरे हुए थे; मगर सलाह-मशवि के लिए वे बराबर बापूजी के पास आते रहते थे। बीच में कुछ दिनों लिए बातें मुलतवी रहीं, इसलिए बापूजी २७ मई को मसूरी चले गए वहां उन्होंने हरिजनों और गरीब पहाड़ियों की स्थिति पर विशेष रूप ध्यान दिया और यह इच्छा प्रकट की कि मसूरी में गरीबों के लिए एक धर्म शाला बन जाय। कुछ चंदे के वायदे भी लिये गए; मगर बापूजी आ जून को दिल्ली आ गए और वह काम बीच ही में रह गया।

१६ जून को मन्त्रिमंडल-मिशन ने भारत छोड़ने की घोषणा क और २८ जून को गांधीजी पूना चले गए।

५ जुलाई को महासमिति के अधिवेशन के लिए बापूजी बम्ब गए। बापूजी से मिलने मैं भी बम्बई गया था। एक दिन टहलते हुए उन्हों मेरे संबंध में बहुत-सी बातें कीं और कहा कि मैं यह पसंद करूं कि तुम किसी देहात में बैठकर समग्र ग्राम की योजना चलाओ मेरे साथ सेवाग्राम में रहो।

: १२ :

विषाद और वैराग्य

१६ अगस्त, १९४६ को मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्रवाई' मनाया। परिणामस्वरूप उसी दिन से देश में खून की नदियां बहने

२ सितम्बर को केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार बनने वाली थी। बापूजी २६ अगस्त को फिर से दिल्ली आये और वाल्मीकि मंदिर में ही ठहरे। २ सितम्बर को वाल्मीकि मंदिर में सुबह से ही धूम मची हुई थी। जिन अधिकारों के लिए कांग्रेस वर्षों से लड़ती आई थी वे अब मिलते दिखाई दे रहे थे; देश के कर्मठ और तपे हुए नेता हुकूमत की बागडोर संभालने वाले थे। बापूजी के निवास-स्थान को राष्ट्रीय झंडों से खूब सजाया गया था। ११ बजे नेता शपथ लेने वाले थे। वहां जाने से पहले वे सब बापूजी का आशीर्वाद लेने आ रहे थे। सबसे पहले राजेन्द्रबाबू आये, फिर शरत बोस, जगजीवनरामजी और सरदार वल्लभभाई पटेल। सबने बापूजी का आशीर्वाद लिया। उनके माथों पर तिलक किया गया। बहनों ने उनकी आरती उतारी; उन्हें फूल-मालाएं पहनाईं। फल और मिठाई बांटी गई। बापूजी का उस दिन मौन था। उन्होंने कागज के एक टुकड़े पर लिखकर दिया—"नमक-कर खतम करो, डांडी-मार्च न भूलो, एकता कायम करो, छुआछूत हटाओ, खादी को सर्वप्राप्त बनाओ।" वन्दे मातरम् के गायन के साथ सबको विदा किया गया। पंडित जवाहरलालजी बापूजी का आशीर्वाद लेने सुबह न आ सके थे, वह रात को आए।

बापूजी का अधिक समय आजकल हुकूमत के मामलों में ही जाता था, मगर और बातों की ओर से भी वह गाफिल न रहते थे। भंगियों के सुधार की ओर तो उनका ध्यान था ही, साथ ही चरखा और खादी भी उनके ध्यान से बाहर न थे। कातना सिखाने के लिए तो उन्हें बाकायदा एक क्लास ही खुलवादी, जो ११ सितम्बर से पंद्रह दिन के लिए जारी हुई। करीब १२५ भाई-बहन इसमें आने लगे। बापूजी दिन में एक बार क्लास की प्रगति देखने अवश्य जाते थे।

तिथि के हिसाब से २२ सितम्बर को बापूजी की वर्षगांठ थी। राष्ट्रीय सरकार बनने के बाद यह उनकी पहली वर्षगांठ थी। कैम्प-निवासियों में इस उत्सव को मनाने की बड़ी उमंग थी। चरखा-क्लास तो चल ही रही थी। एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया और सामूहिक कताई बड़े पैमाने पर रखी गई। बापूजी और अन्य नेता उसमें भाग लेने

वाले थे। पूरे दिन का कार्यक्रम बनाया गया था। सुबह ही राजेन्द्र बाबू द्वारा झंडा-सलामी होने वाली थी। निश्चय हुआ था कि झंडा-सलामी के बाद स्वयंसेवकों और भंगी बस्ती में रहने वाले बालकों को थोड़ी सूखी मेवा और एक-एक फल प्रसाद-रूप बांटा जाय। इसके लिए हमने सब सामान तैयार कर लिया था। स्वप्न में भी विचार न था कि यह छोटी-सी बात एक अत्यन्त जटिल स्थिति उत्पन्न कर देगी। सारा कार्यक्रम बापूजी को बता दिया गया था, मगर प्रसाद बांटने की बात को गौण समझकर उनसे उसकी कोई चर्चा नहीं की गई थी।

चरखा-द्वादशी आई। बापूजी रोज की तरह सुबह की सैर कर रहे थे। किसीने उनसे जाकर कहा कि राजेन्द्र बाबू झंडा-सलामी के बाद मिठाई बांटेंगे। जितना दुःख उन्हें इस समाचार को सुनकर हुआ, उतना शायद किसी अन्य घटना से कभी न हुआ होगा। नायरजी और मुझपर वह बरस ही तो पड़े। "देश में अकाल पड़ रहा है, लोग भूख से बेहाल हैं, खाने को अनाज नहीं मिलता और तुम लोग मिठाई बटवाओगे! तुम लोगों ने मेरे पास रहकर क्या यही सीखा है? मेरे अंदर आग बल रही है। यह हरकत बारूद का काम देगी। मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं क्या करूं?"

और फिर गम्भीर होकर कहने लगे—

"इस प्रकार १२५ वर्ष मैं कैसे जी सकता हूं? मुझमें पूर्ण अनासक्ति नहीं है। तभी मैं इतना महसूस कर रहा हूं, वरना मेरे ऊपर इस घटना का इतना प्रभाव क्यों हो? तुम न हरिजनों की सेवा कर रहे हो, न स्वयंसेवकों की। हरिजन भिखारी नहीं हैं जो उन्हें तुम इतनी-सी चीज दोगे। यह अहिंसा भी नहीं है। तुमने मेरा दिन खराब कर दिया।"

हम लोगों का उत्साह तो उसी क्षण खत्म हो गया। हे भगवान्, हम यह क्या कर बैठे! इसी चिंता में हम डूब गये। लज्जा से हमारे सिर नीचे झुक गए। कोई स्थान अपनी शर्म छिपाने को दिखाई न दिया। उनसे क्षमा कैसे मांगें? बात करने का साहस न था। क्षणमात्र के लिए भी ध्यान में न आया था कि बापूजी इसे इतना खतरनाक समझेंगे। प्रसाद

में हमने मिठाई नहीं रखी थी, मगर सूखी मेवा और फल भी तो खाद्य पदार्थ हैं और उनकी देश को जरूरत है, यह हमारे ध्यान में नहीं आया था। अब क्या करें ? इसका प्रायश्चित्त कैसे हो ? हमें डर था कि बापू कहीं उपवास न शुरू कर दें। भोजन में परिवर्तन तो उन्होंने तुरंत कर ही दिया। अब क्या हो ? आखिर हिम्मत बांधकर मैंने क्षमा-याचना का पत्र लिखा, जिसका उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया--

"तुम्हारा खत अज्ञान और भावुकता से भरा है। तुम लोगों की गलती मेरे लिए निमित्तमात्र बनी। मैं जाग्रत हुआ। अपने खाने में मुझे वैभव की बू आई। जो परिवर्तन किया है वह मेरे लिए स्वाभाविक है, प्रायश्चित्त तो है ही नहीं। तुम्हें तो यह प्रार्थना करनी चाहिए कि वह मेरे लिए स्वाभाविक बने। अगर नहीं होगा तो मैं पुराने ढंग पर आ जाऊंगा। शाक छोड़ा तो है ही नहीं, मैं उसका रस लेता हूं। फल के बदले गुड़ की मात्रा अधिक ली है। गेहूं लेना पड़ेगा तो लूंगा। तुम्हारा प्रायश्चित्त दुःखी होना नहीं, बल्कि जाग्रत और सावधान होना है। न उपवास है, न और कोई कष्ट उठाना है। अज्ञान को मिटाना और भावुकता के बदले सावधानी के साथ अनासक्तिपूर्ण कर्म है। मेरी फिक्र बिलकुल मत करो।" (२५-९-४६)

कोई बहस की तो गुंजाइश थी ही नहीं, न ही कोई सफाई पेश की जा सकती थी। मौन रहकर हम सब कुछ देखते रहे।

सच कहूं तो वह घड़ी बहुत ही अशुभ थी। मैंने देखा कि उस दिन से बापूजी को जितनी वेदना सहनी पड़ी, उतनी उन्होंने अपने जीवन में कभी न सही होगी। उस दिन से उन्होंने १२५ वर्ष तक जीने की बात तो छोड़ ही दी और इस घटना का दसियों बार जिक्र किया, यहां तक कि जब वह लार्ड माउंटबेटन से मिलने गए और मैं उनका सुबह का भोजन वाइसराय-भवन में लेकर गया तो मैंने सुना कि वह उनसे इसी घटना की चर्चा कर रहे थे और मेरा ही हवाला दे रहे थे। उस दिन से देश में एक के बाद एक ऐसी घटना घटती रही जिससे उनके हृदय की पीड़ा बढ़ती ही रही। मेरा पक्का विश्वास है कि यदि वह चाहते तो १२५ वर्ष अवश्य

जिन्दा रह सकते थे, मगर अब जीवन में उन्हें कोई रस नहीं रह गया था। पहले उन्हें कलकत्ते और नवाखाली का आघात पहुंचा, फिर विहार का। उसके बाद देश के दो टुकड़े हो गए, जिसके वह कट्टर विरोधी थे और जिसके विरुद्ध उन्होंने तीन दिन तक अपने प्रवचनों में आवाज वुलंद की थी। देश के आजाद होने पर वह आजादी की खुशी में शरीक तक न हुए। नंगे पैरों, भयंकर शीत काल में वह नवाखाली के गांव-गांव में अकेले यात्रा करते रहे, मानो धर्मराज स्वर्गारोहण कर रहे हों। उनके लिए यह स्वतंत्रता कौड़ी काम की न थी, क्योंकि जहां एक ओर आजादी की खुशियां मनाई जा रही थीं, जलूस, जलसे और दीपमालिकाएं हो रही थीं, वहां दूसरी ओर पंजाब में खून की नदियां वह रही थीं। लूट और संहार का वाजार गर्म था। माताएं, वहनें और वेटियां नरक की यंत्रणाएं भोग रही थीं। वापूजी सब कुछ सुन रहे थे, सब कुछ देख रहे थे। इन दुर्घटनाओं ने उनका हृदय चूर-चूर कर दिया था। उनकी आंखों में आंसू न था, क्योंकि वह किस-किसके लिए विलाप करते ! सब उन्हींकी तो संतान थे। वह ऊपर से शांत और स्थिर थे, मगर उनके अंदर एक भीषण दावानल धधक रहा था और क्षण-प्रतिक्षण उन्हें भस्म करता जा रहा था। जिस अहिंसा के वल पर उन्होंने देश को स्वतंत्र करवाया था; अपनी उसी जीवनसंगिनी अहिंसा को उन्होंने देश की गली-गली और कूचे-कूचे में धक्के खाते, अपमानित होते देखा। जनता जिस सीढ़ी से अंतिम मंजिल पर पहुंची थी, उसे ही उठा कर उसने फेंक दिया था। उनके मुंह से अव वार-वार यही शब्द निकलने लगे थे—"इस पतन को देखने के लिए मैं जिन्दा रहना नहीं चाहता।" 'करूंगा या मरूंगा' की चाह अव उनके मन में बस गई थी। उनके हृदय की वेदना को समझने की शक्ति किसी में न थी। वह हंसते थे और खेलते भी थे, मगर उनके अंदर प्रचंड अग्नि सुलग रही थी। घायल की गति को घायल ही समझ सकता है। मगर उन जैसा घायल तो कोई था ही नहीं। उनके दर्द को समझने की सामर्थ्य रख ही कौन सकता था ? उसकी थाह लगाने की शक्ति या तो स्वयं उनमें थी, या उनके राम में, जिसके पुण्य नाम का उच्चारण वह कभी-कभी वड़ी

दर्दभरी ध्वनि में किया करते थे।

मैं जब उन्हें कोई समाचार सुनाता और कहता कि इस गलती को आप ही ठीक करवा सकते हैं तो वह बड़े करुणाजनक शब्दों में उत्तर देते—"मेरी कहां चलती है!" उनके इस वाक्य में उनकी व्यथा भरी हुई थी। मैंने वह समय भी देखा है, जब बापूजी के मुंह से निकला हुआ शब्द पत्थर की लकीर बन जाता था और उसे मिटाने का किसीको साहस नहीं होता था। अब उसी राष्ट्र-पिता के मुंह से बार-बार मैंने ये शब्द भी सुने—"मेरी कहां चलती है!" वह भगवान् व्यास की उपमा दिया करते थे, जिन्होंने महाभारत में कहा है—"मैं हाथ उठा-उठा कर बार-बार चेतावनी देता हूं मगर मेरा कहना अरण्यरोदन बन गया है। कोई उसपर ध्यान नहीं देता।" (दीर्घ बाहुः विरौम्येष नैव कश्चित् शृणोति मे।)

कोई सुने या न सुने, बापूजी अपना सत्यमार्ग नहीं छोड़ते थे और जो उचित समझते थे, कहे बिना न रहते थे। वह सच्चे अर्थ में भविष्यवेत्ता और भविष्य-दृष्टा थे। ऐसा लगता था मानों आने वाली घटनाएं उनकी दिव्य दृष्टि के सामने अनायास चली आती थीं। देश के बटवारे के विरुद्ध उन्होंने तीव्र आवाज उठाई। उनकी न चली, मगर परिणाम क्या हुआ? जिस खून से बचने के लिए बटवारा किया गया था उसकी नदियां बह निकलीं। उनके मुंह से किसी बात का निर्णय पहले निकलता था, उसकी दलील बाद में। उनके साथियों ने एक बार नहीं, अनेक बार देखा कि उन्होंने जो कहा वही सत्य निकला। महाकवि भवभूति के शब्दों में "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुवर्तते!" (जो कुछ हुआ है उसे वैसा ही कहना साधारणजनों के लिए सत्य की परिभाषा है, परन्तु महान् आदि ऋषि जो कुछ कह देते हैं, वही सत्य हो जाता है।)

२ अक्तूबर को बापूजी का अंग्रेजी हिसाब से जन्म-दिवस था। चरखा-द्वादशी की घटना से हम सब इतने घबरा गए थे कि आज हमने कोई भी नई बात नहीं की। मिलने वाले आते, बापूजी को फूल भेंट करते और प्रणाम करके चले जाते। बापूजी को फूलों का तोड़ा जाना भी खटकता था। वह कहा करते थे कि फूल तो अपने स्थान पर ही शोभा देते हैं।

वह अपने ऊपर फूल चढ़वाने के या माला पहनने के तो और भी अधिक विरोधी थे, फिर भी समय-समय पर इन त्रुटियों को दरगुजर कर देते थे।

बापूजी जितने दिनों दिल्ली में रहे, नेता लोग उनसे कुछ-न-कुछ सलाह करने हर रोज आते थे। बीच-बीच में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक भी होती रहती थी। इन्हीं दिनों कांग्रेस महासमिति की भी बैठक हुई। मुस्लिम लीग के केन्द्र में आने की बात चल रही थी। आखिर २५ अक्तूबर को वह केन्द्र में शामिल हो गई। बंगाल और नवाखाली की खराब हालत के कारण बापूजी वहां जाने को अधीर हो रहे थे। उन दिनों उनके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्या ही सर्वप्रथम स्थान रखती थी। आखिर दो मास दिल्ली में ठहरने के बाद वह २८ अक्तूबर को नवाखाली जाने के लिए कलकत्ता चले गए।

बापूजी के जाने के कुछ ही दिनों बाद बिहार का साम्प्रदायिक उपद्रव हुआ। दिल्ली में भी दंगा हुआ। गढ़मुक्तेश्वर की घटना घटी और देश में हाहाकार मच गया। छः नवम्बर को बापूजी ने बिहार के लिए उपवास शुरू किया और जब वहां पूरी तरह से शांति स्थापित हो गई तभी उसे छोड़ा। नवाखाली में बापूजी ने अपने सब साथियों को जुदा-जुदा स्थानों पर बैठाकर स्वयं नंगे पैर अकेले यात्रा की। जब वहां की स्थिति कुछ सुधर गई तब वह पटना गए।

३१ मार्च, १९४७ को एशियाई सम्मेलन में शरीक होने बापूजी दिल्ली आए। इस बार भी वह वाल्मीकि मंदिर में ही ठहरे। वेवल के स्थान पर माउंटबैटन वाइसराय होकर आ गए थे। उनसे वह १ अप्रैल को मिले। पहली ही मुलाकात में दोनों दोस्त बन गए। कई दिन तक वह उनसे हर रोज मिलते रहे और उन्होंने माउंटबैटन को 'ईशोपनिषद' और 'सांग सैलेश्चियल' पुस्तकें भी भेंट कीं।

इस बार बापूजी की पार्टी बहुत ही छोटी थी। मनु और बिशनभाई ही सेवा में थे। शाम की प्रार्थना में जब कुरान शरीफ की आयत पढ़ी जाने लगी तो कुछ आदमियों नें आपत्ति की। दूसरे दिन बापूजी ने प्रार्थना शुरू करने से पूर्व ही विरोध करने वालों से हाथ उठवाया। दो ने

विरोध किया। इसपर उन्होंने प्रार्थना की ही नहीं और कहा—"जब तक एक भी विरोधी रहेगा मैं प्रार्थना नहीं करूंगा, क्योंकि मैं अल्पमत की पूर्ण रक्षा करना चाहता हूं।"

२ अप्रैल को बापूजी ने एशियाई सम्मेलन के खुले अधिवेशन में भाषण दिया, जिसमें उन्होंने संसार की एकता (विश्वैक्य) की भावना पेश की। लार्ड माउन्टबैटन से तो अब उनकी मुलाकातें नित्यप्रति होने लगीं। सम्मेलन में जो प्रतिनिधि देशदेशांतर से आए थे वे प्रति दिन बापू से मिलने आने लगे। तरह-तरह की शक्लें, तरह-तरह के भेष, तरह-तरह की भाषाएं सुनने को मिलीं। बापूजी के पास सब आते, भांति-भांति के तोहफे लाते और अपनी श्रद्धांजलि भेंट करते। १२ अप्रैल को बापूजी पटना लौट गए।

१ मई, १९४७ को बापूजी को कांग्रेस कार्यसमिति में शरीक होने के लिए फिर दिल्ली आना पड़ा। इस बार भी शाम की प्रार्थना में हिन्दू-सभाइयों और संघियों ने विरोध करना शुरू किया और कई दिनों तक प्रार्थना बन्द रही। ४ मई को बापूजी जिन्ना से मिले। समाजवादियों से भी बातें चलीं। इन दिनों देश के बटवारे का सवाल छिड़ा हुआ था। बापू इसका विरोध कर रहे थे। ७ मई को वह कलकत्ता चले गए। २५ मई को उन्हें फिर दिल्ली आना पड़ा। उनके साथ मनु और बिशन ही थे। इस बार भी प्रार्थना में विरोध हुआ, मगर प्रार्थना बन्द नहीं की गई।

२९ मई की सुबह को टहलते समय मैंने उनसे पूछा—"मैं देखता हूं कि आपकी स्थिति एक समान चली आ रही है। आपने कह दिया है कि भय से या तलवार के जोर से हम पाकिस्तान एक इंच भी नहीं देंगे, दलील से चाहे सारा भारत ले लो। लेकिन आपके और कार्यसमिति व अन्तरिम सरकार के विचारों में भेद है। वे तो तलवार के भय से पाकिस्तान दे रहे हैं। इस देश को आपने बनाया है, आप उसे यहां तक लाये हैं, आपने लड़ाइयां लड़ीं और 'भारत छोड़ो' का नारा दिया। अब जब कि आखिरी फैसला हो रहा है उसमें आपका हाथ ही नहीं है और विधान-परिषद् में भी

जो उसूल हमें वताये गए थे, उनका दसवां भाग तक इन फैसलों में नहीं रखा जा रहा है।" वह बोले—"मेरी आज कोई मानता नहीं है।" मैंने कहा—"जनता तो आपके पीछे है।" बापू बोले—"वह भी नहीं है। गुजरात वाले कहते हैं कि तुम हिमालय में चले जाओ। जो मुझे नेता मानते थे वे मेरी तस्वीर को तो पूजते हैं; लेकिन उनका नेता मैं नहीं रहा।" मैंने कहा—"भले ही आज वे आपकी न सुनें, कुछ वर्ष वाद आपकी ही सुनेंगे।" वह बोले—"क्या पता उस वक्त तक मैं जिन्दा भी रहूंगा या नहीं। मुझे लगता है कि अव मैं अधिक समय तक जिन्दा नहीं रहूंगा।"

उस दिन वापूजी ने शाम के प्रवचन में भी बड़े महत्त्व की बातें कहीं। लोग ३ जून के दिन से वहुत भयभीत थे। उन्होंने कहा —"भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। सबको एक दिन मरना है। मरना सीख लो। मरने के भय से एक दमड़ी पाकिस्तान को नहीं देंगे। दलील से सब कुछ दे देंगे। अपनी बुद्धि को स्थिर करो। शांति से बैठकर सब बातों पर विचार करो।"

सुबह की सैर में बापूजी की राजेन्द्र बाबू से नियमित रूप से बातें हुआ करती थीं। विषय अधिकतर अनाजों पर से कंट्रोल हटाने का होता था। सरकार के लगाए तमाम कंट्रोलरों के वह कट्टर विरोधी थे। इनको वह देश के लिए हानिकारक मानते थे। उनका विश्वास था कि अपने देश में खाद्य पदार्थों की कमी नहीं है; कंट्रोलों के कारण ही तमाम असुविधाएं हैं। राजेन्द्र बाबू के साथ उन्हें कितनी-कितनी दलीलें करनी पड़ीं, यह सुनने वाले ही जानते हैं। बापूजी ने मंत्रियों को चैन नहीं लेने दिया और आखिर कंट्रोल हटवाकर ही दम लिया। आपस की बातचीत में और प्रार्थना के प्रवचनों में भी कई दिनों तक वह कंट्रोल हटाने पर जोर देते रहे। सरकार विशेषज्ञों की राय का ख्याल रख कर डरती थी कि कहीं कंट्रोल हटाने से लेने-के-देने न पड़ जायं। आखिर उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी और आज देश का बच्चा-बच्चा कंट्रोलों से मुक्त होकर अपने बापू को दुआ दे रहा है।

सबसे पहले चीनी पर से कंट्रोल हटा। कीमतों में एकदम अंतर पड़ने लगा। गुड़ और चीनी आसानी से मिलने लगे। बापूजी की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। फिर अनाज पर से कंट्रोल हटा। उसके भाव भी गिरे और अनाज मिलना सुलभ हो गया। अंत में कपड़े पर से भी कंट्रोल हटा लिया गया।

बापूजी इतने से ही संतुष्ट नहीं थे। वह चाहते थे कि जनता को हर वस्तु सस्ते दामों आसानी से मिल सके। इसमें सबसे बड़ी रुकावटें वह माल के आमदरफ्त की समझते थे। रेल से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में बड़ी कठिनाई थी; इसलिए उन्होंने पेट्रोल पर से कंट्रोल हटाने के लिए जोर देना शुरू किया और अंतिम दिनों में वह इसी पर जोर दे रहे थे। मगर यह उनके रहते न हो सका।

३१ मई से बापू के प्रवचनों का रेडियो द्वारा रेकार्ड लिया जाने लगा और यह सिलसिला उनकी मृत्यु से एक दिन पहले—अर्थात् २९ जनवरी, १९४८ तक जारी रहा।

: १३ :

विभाजन का आघात

३ जून, १९४७ को भारत-विभाजन की घोषणा हुई। इन दिनों सबसे अधिक परेशान बादशाह खान थे। वह देख रहे थे कि इस घोषणा से उनके प्रांत का भविष्य बहुत ही अंधकारमय हो जायगा। उनके हृदय की व्यथा बापूजी के सिवा और कोई नहीं समझ सकता था। इस बटवारे से बापूजी को भी कुछ कम दुःख नहीं पहुंचा।

उन्होंने एक भाई से मुलाकात करते हुए अपने हृदय का दुःख इन शब्दों में प्रकट किया—"आजकल मुझे हरएक पर क्रोध आता है, अपने-आप पर आता है। मैं अधिक जी नहीं सकता। भगवान के सिवा मेरा और कोई साथी नहीं। मेरा विवाह तो उसीसे हुआ है। वह मुझे छोड़ भी दे तो मैं उसे नहीं छोड़ूंगा।"

इन दिनों कार्यसमिति की बैठक नित्य हुआ करती थी और रोज ही बापूजी वाइसराय से मिलने जाते थे। उनके मन की वेदना का पार नहीं था। जीवन में उन्हें कोई रस नहीं रह गया था। हां, ईश्वर पर उनका विश्वास अब भी अटल था।

बापूजी के सामने अब एक नई समस्या शरणार्थियों की आ खड़ी हुई थी। मार्च के महीने में पंजाब और सीमाप्रांत में जो दंगा हुआ था उसके फलस्वरूप रावलपिंडी तथा उसके आसपास से हजारों लोग भाग कर दिल्ली, हरद्वार आदि स्थानों में आ गये थे। २१ जून को बापूजी और पं० जवाहरलाल नेहरू हरद्वार में उन लोगों को देखने गये। जिस समय उनकी मोटर हरद्वार में दाखिल हुई उस समय बापूजी के विरोध में एक जलूस निकल रहा था। दो आदमी मोटर पर चढ़ बैठे। बड़ी कठिनाई से उन्हें उतारा गया।

उन्हें हटाने के लिए मैं मोटर का दरवाजा खोल कर नीचे उतर ही रहा था कि एक ने बापूजी के पास आकर उनका पैर खींचने की कोशिश की। बड़ी कठिनाई से मैं उसे हटा पाया।

बापूजी जहां ठहरे थे, वहां भी उनके खिलाफ नारे लगाये गये। शाम को उन्होंने कैम्प देखे। एक कैम्प में भाषण करते हुए उन्होंने शरणार्थियों का ध्यान कर्त्तव्य-पालन की ओर आकर्षित किया। उसी दिन वह दिल्ली लौट आये। २ जुलाई को वह शाहदरा सम्मेलन में प्रवचन करने गये।

४ जुलाई को एक हिंदू महासभाई बापूजी से मिलने आये। उनसे अपने विचार प्रकट करते हुए बापूजी ने कहा—"भारत को अब भी एक मानता हूं। उसमें से कुछ हिस्सा अलग हो गया है जिसे पाकिस्तान कहा जा रहा है। मगर दोनों जगह के बाशिंदे हिन्दुस्तानी ही रहेंगे। एक कौम रहेगी। इसलिए पाकिस्तानी इलाके के हिंदुओं को अपने को भारतवासी ही मानना चाहिए। इस नाते यूनियन सरकार पाकिस्तान इलाके के हिंदुओं की भी मुसीबत के समय रक्षा करेगी, उन्हें मदद देगी। पाकिस्तान वाले मुसलमानों ने यदि अपने-आपको जुदा कौम मानना शुरू

कर दिया और हिन्द के मुसलमान भी अपने-आपको पाकिस्तान के नाते ऐसा ही समझने लगें तो वे विदेशी बन जायंगे और उनके हक वे नहीं रहेंगे जो हिंदियों के होंगे। हिंद में विदेशियों के लिए जो नियम बनेंगे, वे उनपर भी लागू होंगे। मगर हिंदू-मुसलमान ऐसा करेंगे नहीं।" बापूजी ने यह भी कहा—"जो लोग पंचम कालम का काम करेंगे, उनके लिए मौत की सजा के अलावा और कुछ हो ही नहीं सकता, उन्हें तो गोली से उड़ा देना होगा, हालांकि वह मेरा तरीका नहीं है।"

५ जुलाई को लेडी माउंटबैटन बापू से मिलने आईं। यह पहला अवसर था जबकि वाइसराय की पत्नी किसीसे मिलने अपने घर से बाहर निकली थीं। आकर वह बापूजी के पास चटाई पर बैठीं और उसके बाद जब कभी बापूजी से मिलने आईं, चटाई पर ही बैठीं।

बापूजी के साथ मैंने अनेक यात्राएं की हैं। उनके साथ मेरी अन्तिम यात्रा काश्मीर की थी। कितने ही दिनों से विवाद चल रहा था कि वहां नेहरूजी जायं या नहीं। आखिर बापूजी ने स्वयं ही जाने का निर्णय किया। ३० जुलाई को हम नई दिल्ली से निकले। साथ में मनु, आभा, डाक्टर सुशीला और बिशनभाई थे। सरकार की ओर से सी० आई० डी० के दो सिपाही और गारद भेजी गई थी।

बापूजी के साथ यात्रा करना कुछ आसान काम नहीं था। हर स्टेशन पर दर्शकों की भीड़, जयजयकारों का शोर और हर व्यक्ति का डिब्बे में घुसकर दर्शन करने का प्रयत्न। दर्शक बापूजी की सुविधा-असुविधा का तो ख्याल करते ही न थे। रात का समय हो, गांधीजी घोर निद्रा में पड़े हों, मगर उन्हें दर्शन अवश्य चाहिएं। उनसे जितना शांत और मौन रहने को कहो, वे उतना ही और गला फाड़ेंगे, नाराज होंगे, कहेंगे—'हम तो घंटों से बैठे हैं, तुम दर्शन भी नहीं करने देते?' उनकी शायद मान्यता थी कि महात्मा को न भोजन चाहिए, न आराम और न कोई काम! उनका एक ही धंधा है और वह यह कि वह लोगों को दर्शन दिये जायं। गांधीजी से शोर सहन नहीं होता था। वह कानों में रुई रख लेते थे और अंगुलियों से उन्हें बन्द कर लेते थे। गांधीजी भी दर्शकों को यों ही नहीं

छोड़ देते थे। स्टेशन आया, गाड़ी खड़ी हुई, उधर दर्शक चीख रहे हैं, इधर गांधीजी का हाथ खिड़की के बाहर फैल गया और हरिजनों के सहायतार्थ पैसों की मांग होने लगी। जितने साथी हैं, उनके भी हाथ फैल गये और पैसा जमा होने लगा।

इस प्रकार के अनेक दृश्य देखने में आये, मगर एक दृश्य ऐसा था जैसा पहले कभी देखने में नहीं आया था। काश्मीर जाते समय जैसे ही गाड़ी अमृतसर स्टेशन पर रुकी, 'गांधी लौट जाओ' के नारे सुनाई दिये। कोई डेढ़-दो सौ नौजवान काली झंडियां लिये डिब्बे के सामने आ खड़े हुए और लगे गांधीजी पर प्रहार करने। ताक-ताक कर सैकड़ों झंडियां उन्होंने गांधीजी पर फेंकीं और गला फाड़-फाड़कर नारे लगाये। गांधीजी बड़े इत्मीनान के साथ कान बन्द किये यह सब दृश्य देखते रहे। उस वक्त मैं याद कर रहा था १९१९ के उस पंजाब को जिसने गांधीजी की गिरफ्तारी का समाचार सुनकर हकूमत का तख्ता पलटने की ठान ली थी और इसी अमृतसर में अपने खून की नदियां बहा दी थीं। २८ वर्ष बाद वही गांधी अमृतसर-निवासियों के कटु शब्द सुन रहा था और उनके अपमानजनक प्रहार सहन कर रहा था!

३१ जुलाई को हम रावलपिंडी पहुंचे और एक रात वहां ठहर कर पहली अगस्त को श्रीनगर पहुंच गये।

श्रीनगर अंदर से तंग-सा शहर है। गलियां बहुत संकरी हैं। मोटर एक बार चली जाय तो उसका घूम कर लौटना कठिन। मुझे इस बात का पता न था। शेख अब्दुल्ला की पार्टी के लोग बापूजी को अपनी पार्टी के दफ्तर में ले जाना चाहते थे। हजारों आदमी दर्शन को खड़े थे और जय-घोष हो रहा था। मोटर अंदर दाखिल होगई, मगर भीड़ का ओर-छोर नहीं दिखाई देता था और नारों की आवाज से कान के परदे फटे जा रहे थे। बापूजी को इतने जोर से बोलते मैंने कभी नहीं सुना था। कहने लगे—"तूने पहले आकर सब प्रबंध क्यों नहीं देखा? मैं तो अब पैदल चलूंगा।" मेरे तो होश उड़ गये। मैं मोटर से उतर कर भागा और लोगों के सामने खड़ा होकर हाथ जोड़ने लगा कि खुदा के लिए शोर बन्द

करो और जलसे के स्थान पर पहुंचने दो। जैसे-तैसे वापूजी वहां पहुंचे। उस चक्रव्यूह से निकलकर मैंने शांति की सांस ली। मगर मुसीवत अभी खत्म न हुई थी। अभी काश्मीरी पंडितों की स्त्रियों की सभा में जाना वाकी था। वापूजी ने कहा—"तुम और सुशीला जाओ। यदि रास्ते में ऐसी ही भीड़ होगी तो मैं वहां हरगिज न जाऊंगा।" मैं और सुशीला सभा-स्थान पर पहुंचे। वहां वीस-पच्चीस हजार औरतें घंटों से वैठी प्रतीक्षा कर रही थीं। रास्ता वही तंग। यह कहने की हमें हिम्मत ही न हो कि गांधीजी नहीं आ सकते, मगर उन्हें वहां तक पहुंचाएं कैसे? आखिर एक दूसरा रास्ता निकाला गया। उस ओर से आने में रास्ते में नहर पड़ती थी। उसमें किश्ती डाली गई। वापूजी को वड़ी खामोशी से वहां लाया गया और किश्ती में वैठाकर पार उतारा गया, तव कहीं वह उस सभा में पहुंचे। हालांकि दिन में वह इतने नाराज हो चुके थे, फिर भी जो कार्यक्रम वन चुका था उसको पूरा करके ही रहे; क्योंकि जो कार्यक्रम वन जाता था उसे वह भरसक टालते नहीं थे।

४ अगस्त को हम श्रीनगर से जम्मू आये और वहां से ५ तारीख को रावलपिंडी के पास वह कैम्प देखने गये, जहां हजारों शरणार्थी भयभीत पड़े हुए थे। वापूजी ने उन्हें शांत और निर्भय रहने का उपदेश दिया और डा० सुशीला को कुछ दिनों के लिए उनके साथ छोड़ दिया। दिन में वापू पंजा साहव के गुरुद्वारे में गये। वहां उन्होंने प्रवचन करते हुए सिक्खों को कर्त्तव्य-परायण वनने का उपदेश दिया।

६ अगस्त की सुवह को हम लाहौर वापस आये। दिन भर वहां ठहरकर रात की गाड़ी से वापूजी पटना होते हुए कलकत्ते के लिए रवाना हो गये। वापसी में अमृतसर में लोगों ने अपनी पिछली हरकत के लिए क्षमा मांगी और हरिजन-फंड के लिए चन्दा जमा किया। वापूजी से उन्होंने थैली लेकर रखली और कहा कि इसे भर कर भेजेंगे। मगर उसके वाद वहां ऐसा तूफान आया कि प्रलय ही मच गया। फिर कौन आता और चन्दा जमा करता।

सहारनपुर तक मैं बापूजी के साथ आया। वहां से मैं दिल्ली चला आया और बापूजी आगे पटना चले गये।

●

१४ अगस्त की मध्यरात्रि और १५ अगस्त का दिन किसे न याद रहेगा ? इस रात सदियों की गुलामी के बाद भारत स्वतन्त्र हुआ था। ६२ वर्ष से कांग्रेस जिस ध्येय के लिए लड़ रही थी, वह उस दिन प्राप्त हो गया था। खुशियां मनाई गईं। रोशनियां हुईं। भीड़का कोई अन्दाजा न था। राजधानी राष्ट्रीय झंडों से दुलहन की तरह सजी हुई थी। शाम के समय जब गवर्नर-जनरल स्वतन्त्र भारत के तिरंगे झण्डे को सलामी दे रहे थे, ठीक उसी समय आकाश में इंद्रधनुष निकला। जनता ने उसे शुभ लक्षण माना। वह शुभ था या अशुभ यह भगवान ही जाने।

१६ अगस्त को जब नेहरूजी ने लालकिले पर तिरंगा झंडा लहराया तो कोटि-कोटि कंठों से 'भारत-माता की जय' और 'राष्ट्रपिता बापू की जय' के नारे गूंज उठे। मगर वह राष्ट्रपिता, जिसके प्रताप से , जिसके प्रयत्न से, जिसकी तपस्या से, यह दिन देखना नसीब हुआ था, उस समय कहां था ? वह उस दिन सब खुशियों से अलग, अपने दिल में दर्द छिपाये, बिहार और बंगाल की उजड़ी गलियों में भटकता फिर रहा था !

: १४ :

'करने या मरने' का संकल्प

स्वतन्त्रता के साथ-ही-साथ पंजाब में कत्लेआम शुरू हुआ। हजारों की संख्या में हिन्दू और सिख भाग-भाग कर दिल्ली आए। यहां की फिजा भी बिगड़ने लगी। २८ अगस्त को ८६ घंटे का कर्फ्यू लग गया। उधर कलकत्ते की हालत भी बिगड़ चली।

१ सितम्बर को बापूजी ने कलकत्ते में उपवास शुरू कर दिया।

वहां दंगा हो गया था और बापूजी ने निश्चय किया था कि जबतक शांति न हो लेगी तबतक वह भोजन न करेंगे। वह एक मुसलमान के घर में रहने चले गये थे। वहां उनपर कुछ नौजवानों ने ईंट और लाठी से हमला किया, मगर ईश्वर ने उनकी रक्षा की।

बापूजी के उपवास ने कलकत्ते में जादू का काम किया। वहां एकदम शांति की लहर दौड़ गई और ४ तारीख की रातको ७३ घंटे के बाद उन्होंने अपना उपवास खोल दिया। मगर उनके नसीब में शांति कब बदी थी ? कलकत्ते की स्थिति सुधरी तो पंजाब की खबरें बेचैन करने लगीं और बापूजी ने वहां जाने का निश्चय किया।

८ सितम्बर, १९४७ को बापूजी कलकत्ते से पंजाब के लिए चले। रास्ते में ही उन्हें दिल्ली के उपद्रव का समाचार मिला। यहां ४ सितम्बर से कहर बरपा हो रहा था। शहर बन्द पड़ा था। मोहल्ले-मोहल्ले और गली-गली में उपद्रव मचा हुआ था। लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे बने हुए थे। गोलियों और तोपों की आवाज हर वक्त आती रहती थी। ऐसा लगता था कि जैसे दिल्ली जंग का मैदान बन गया हो। अस्पताल जख्मियों से भर गये थे।

इसी बीच खबर आई कि बापूजी दिल्ली आ रहे हैं। प्रश्न उठा कि उन्हें ठहराया कहां जाय ? वह वाल्मीकि मंदिर में ही ठहरते आए थे। मैं उसे ठीक करवाने गया, मगर वहां की हालत ही और थी। सारा स्थान शरणार्थियों से भरा था। रास्ते में लोग जगह-जगह जमा थे। उनके चेहरों पर परेशानी और हाथों में लकड़ियां थीं। रास्ते में कई लाशें भी पड़ी मिलीं।

अब सवाल यह था कि प्रबन्ध कैसे हो ? जैसा कि मैंने बताया, बाजार बन्द पड़े थे। मजदूरों का कहीं पता न था। सामान कहां से मिले ? इस हालत में बापूजी को वहां कैसे ठहराया जा सकता था ! आपस में सलाह-मशविरा के बाद तय हुआ कि इस बार उनके लिए बिड़लाभवन में व्यवस्था की जाय।

बापूजी ९ सितम्बर की सुबह दिल्ली पहुंचने वाले थे। शहर में

कर्फ्यू लगा हुआ था। केवल चार घंटे दिन में बाजार खुलता था, मगर खाने-पीने की चीजें खरीदने के अलावा और किसी काम के लिए कोई घर से बाहर न निकलता था। बापूजी कौनसे स्टेशन पर उतरेंगे, यह मालूम करने की बहुत कोशिश की, मगर पता नहीं लगा, इसलिए मैं सुबह ही बिड़लाभवन पहुंच गया।

बापूजी ८ बजे के करीब बिड़ला-भवन आए। इस अभागी दिल्ली में उनका यह अंतिम आगमन था। उन्होंने आते ही कह दिया—'करूंगा या मरूंगा'। और अपनी इस युक्ति का उन्होंने शब्दशः पालन किया। उनके साथ मनु, आभा, डा० सुशीला नायर और बिशनभाई थे। प्यारेलालजी और कनु को वह नवाखाली में काम करने के लिए छोड़ आए थे।

दिल्ली में बापूजी का यह अंतिम प्रवास लगभग पांच महीने का था। इस बीच मुझे उनके साथ निरंतर रहने का अवसर प्राप्त हुआ और मैंने देखा कि उन्होंने अपना मन अन्य सब दिशाओं से हटाकर सारा ध्यान तीन बातों पर ला दिया है : (१) हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों के फटे दिलों को जोड़कर उनमें प्रेम की धारा बहाना (२) शरणार्थियों को फिरसे उनके घरों में आबाद करना और (३) सब कंट्रोलों को हटवाना। वह भारत में सच्चे अर्थों में स्वराज्य अर्थात् रामराज्य देखना चाहते थे। उनको रात-दिन एक ही लगन थी–वह यह कि किसी प्रकार भारत का सिर नीचा न होने पाये, वह गौरव के शिखर पर खड़ा होकर चमके और अपना प्रकाश समस्त संसार में फैला दे।

चीनी, अनाज और कपड़े पर से कन्ट्रोल हटाने से जनता को जो संतोष मिला उसकी बात जब उन्हें बताई गई तो उनको अपार आनन्द हुआ। वह गरीबों के साथ तन्मय हो गए थे और उनके हरेक दुःख और कष्ट का साक्षात् अनुभव करते थे। जब मैं उनको कोई रिपोर्ट देता तो वह कहते– "मेरी नोटबुक में लिख दो। आज शाम को प्रार्थना में जिक्र करूंगा।" इस प्रकार कितनी ही बातों की ओर वह सरकार का और जनता का ध्यान खींचते रहते थे। उनके प्रवचन धारा-प्रवाह और हृदय-स्पर्शी होते थे। भले ही किसीको वे न रुचें, किंतु वैद्य की औषधि की तरह उनका परिणाम

लांभकर ही होता था। प्रवचनों का यह सिलसिला उन्होंने १९४४ में आगाखां महल से निकलकर जारी किया था, जो अंतिम दिन के एक रोज पहले तक बराबर जारी रहा। शायद १२५ वर्ष में जितने भाषण उन्हें देने थे उतने उन्होंने तीन-साढ़े तीन वर्ष में ही दे डाले और जैसा कि वह कहा करते थे कि हर एक के सांस गिने होते हैं वैसे ही शायद उनके प्रवचन भी गिने हुए थे, इसीलिये तो वह ३० जनवरी का प्रवचन न कर सके।

शरणार्थियों को उनके घर वापस भेजने के बारे में उनके विचार दृढ़ थे और यदि वह रहते तो ऐसा ही करके छोड़ते। मगर उनका कहना था कि वह उन्हें तबतक अपने घरों में लौटने के लिये नहीं कहेंगे जबतक यह बात साफ न हो जाय कि पाकिस्तान सरकार उनके साथ कैसा बर्ताव करेगी; क्योंकि हिन्दुओं को वहां जाकर इस तरह गुलाम बनकर नहीं रहना है कि वहां वालों के बराबर अधिकार न मिलें। एक दिन मैंने उनसे पूछा कि आप तो बार-बार इस बात पर जोर दे रहे हैं कि इन लोगों को वापस जाना है और सरकार का कहना है कि करोड़ों रुपया खर्च करके उन्हें यहां ला रही है। तब क्या ये लोग आने-जाने में ही लगे रहेंगे? ये लोग कहते हैं कि बंटवारा उनसे पूछकर नहीं किया गया। उनके लिए पाकिस्तान में स्थान नहीं हैं, क्योंकि उनकी वफादारी हिन्द यूनियन के साथ है। ऐसी हालत में आप उन्हें वहां वापस क्यों भेजना चाहते हैं? पाकिस्तान उनपर विश्वास कैसे करेगा?

उत्तर में बापूजी ने कहा, "तुम इस बात को समझ नहीं सकते। अगर यह खून-खराबी न हुई होती तो यह सब पाकिस्तान में ही रहने वाले थे और वहां की वफादारी का ही हलफ उठाने वाले थे।"

हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करने में तो बापूजी को अपनी जान ही देनी पड़ी। हिन्दू यही समझते थे कि वह मुसलमानों का पक्ष ले रहे हैं और हिन्दुओं के नाश पर तुले हुए हैं। उर्दू के जितने भी पत्र मैं पढ़ता था, वे सब बापूजी के लिए गालियों से भरपूर होते थे। कइयों को तो पढ़ना भी कठिन हो जाता था। ऐसी-ऐसी भद्दी गालियां उनमें होती थीं कि जिनको मुंह से निकालना भी घोर पाप है। उर्दू के ही नहीं, हिन्दी और अंग्रेजी

के कुछ पत्रों का भी यही हाल था। कितना जबर्दस्त विरोध वह सह रहे थे! मगर वह थे कि चट्टान की तरह अटल खड़े रहे। अच्छे-अच्छे इस तूफान में वह गये, पर उनके माथे पर बल तक न आया। वह रात-दिन यही कहते रहे कि पाकिस्तान जैसा करेगा, अपने आप भुगतेगा। हमें तो आदर्श कायम करना है, हमारा पल्ला साफ होना चाहिए। यदि यही होता रहा तो हिन्दू धर्म का अवश्य नाश हो जायगा, इस बात को लिख लो। मेरे मरने के बाद मेरी बातों को याद करोगे।

हिन्दुओं और सिखों को बापूजी ने एक बार नहीं अनेक बार चेतावनी दी और कहा कि यदि भारत में मुसलमान न रहने पाए तो वह भारत मेरे आदर्श का भारत न रहेगा और वह दिन देखने के लिए मैं जिन्दा रहना नहीं चाहता।

जिस दिन वह दिल्ली पहुंचे, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। खून की नदियां वह रही थीं। फिसाद के शोले भड़क रहे थे। मगर दिल्ली में उनके क़दम पड़ते ही जैसे ब्रेक-सा लग गया। उसी दिन मुझे एक सरदारजी मिले। मैंने पूछा—"क्या हाल है?" कहने लगे—"रुपये में टकाभर तो बदला ले लिया था, मगर यह बाबा आगया, अब क्या हो सकता है?" यह थी बापूकी आत्मिक शक्ति, जिसने उठे हाथों को नीचे गिरा दिया। लोगों ने चाहे कितनी ही गालियां दी हों, चाहे कितना ही बुरा-भला कहा हो, चाहे कितना ही विरोध किया हो, मगर क़िसी में यह हिम्मत न थी कि उस रुके हुए सैलाब को फिर से जारी कर देता। सब झुंझला-झुंझला कर रह जाते थे और यही कहते थे कि गांधीजी को दिल्ली से एक बार जाने दो फिर हम समझ लेंगे। गांधीजी इस बातको मुसलमान दोस्तों से सुनकर हंस देते और कहते—"मैं तो यहां 'करने या मरने' आया हूं। जब तक आप खुद न कहेंगे, मैं यहां से जाने वाला नहीं हूं।" जब पंजाब वाले आकर कहते कि आप कलकत्ते से पंजाब आने के लिए निकले थे, दिल्ली में ही क्यों रुक गए, तो वह उत्तर देते—"मैं दिल्ली की यह हालत छोड़कर क्या मुंह लेकर पाकिस्तान जाऊं? उन लोगों से जाकर क्या यह कहूं कि दिल्ली में तो मुसलमान नहीं रह सकते, मगर तुम हिन्दुओं को अपने यहां रखो?

आग को उलांघ कर मैं नहीं जा सकता।"

सितम्बर के वे दिन भी कभी भुलाये न जा सकेंगे। दिल्ली के मुसलमान किस वेबसी और वेकसी की हालत में सिर नीचा किये, चेहरों पर सफेद रंग लिये,आंखों में आंसू भरे गांधीजीके पास आते थे और गांधीजी से हिम्मत वांधने वाले शब्द सुनते ही किस प्रकार उनके चेहरों का रंग बदल जाता था। मैं उस दिन की घटना कभी न भूलूंगा जिस दिन बापूजी के आदेशानुसार मैं १३ सितम्बर को उन्हें पुराने किले में ले गया। वहां का शिविर लीगियों से भरा हुआ था। उन्होंने बापूजी की मोटर को घेर लिया। ऐसा लगा मानों वे इस चक्रव्यूह में फंस गये हैं। मोटर में मेरे पास ही पं० श्रीराम बैठे थे। उनके चेहरे पर एक रंग आने लगा एक जाने लगा। मुझसे उन्होंने कहा—"ब्रजकृष्ण, यहां से किसी तरह जल्दी निकलो।" मगर बापू की आवाज आई, "ब्रजकृष्ण, मोटर रुकवाओ। हम इन लोगों से बातें करेंगे।" मोटर रोकी गई। हजारों की संख्या में मुसलमान किले के मैदान में जमा हो गए। गांधीजी ने बड़ी धीमी आवाज में बोलना शुरू किया और पास खड़े एक भाई ने उनके शब्दों को दोहराना आरम्भ किया। धीरे-धीरे लोगों के चेहरों पर क्रोध की जगह संतोष की झलक दिखाई देने लगी और वे ही लोग जो एक क्षण पहले खून के प्यासे नजर आते थे दोस्त बन गए।

उससे तीन दिन पहले, १० तारीख को, दिल्ली की स्थिति के संबंध में चर्चा करते हुए बापूजी ने कहा था—"आज मेरा दिमाग ऐसा नहीं रह गया है कि मैं तफसील को याद रखूं। मैं तो हकीकत को समझ लेता हूं। दिल्ली की स्थिति बंगाल की स्थिति से भिन्न है। वहां तो मैं नवाखाली जाने वाला था कि उसमान साहब आ गए, उन्होंने एक दिन अधिक ठहरने को कहा। उनके साथ मैं वह जगह देखने गया जहां दंगा हुआ था। वह भीड़ को काबू में नहीं ला सके। फिर सुहरावर्दी आ गए। उन्होंने कहा—'कलकत्ता जल रहा है, आप इसे छोड़ कर जायेंगे?' उनके कहने से मैं रुक गया और कलकत्ते जाकर मुसलमानों के घर रहा। मुझ पर हमला हुआ। सुहरा-

वर्दी ने पूरा काम किया। उसका बहुत प्रभाव है। हिन्दुओं से भी बहु
मेल है। लेकिन मैंने न उसमान को बुलाया था, न सुहरावर्दी को
दोनों स्वयं आये थे। दिल्ली में मुझे कोई ऐसा नहीं दिखाई देता जो मे
साथ चल सके और मुसलमानों को रोक सके। न सिक्खों में कोई ऐस
है, न राष्ट्रीय संघ में। मैं स्वयं किसी को नहीं बुलाऊंगा। वह मेरा तरीक
नहीं है। हमेशा स्वयं ही कोई आया है। इसलिए मैं नहीं जानता कि यह
क्या करूंगा। यह जरूर है कि जब तक यहां अमन कायम न हो जाय
मैं यहां से जाऊंगा नहीं।"

इसके बाद बापूजी ने शरणार्थियों के कैम्प देखने का निश्चय किया
वह हुमायूं के मकबरे में गये, जहां कि मेव शरणार्थियों ने उनसे कह
"हम पाकिस्तान जाना नहीं चाहते।" वहां से बापूजी जामियामिल्लि
गए और झील कुरंजा के शरणार्थियों से मिले। जामिया-मिल्लि
से वह कस्तूरबा बालिका आश्रम देखने गए। लौटते समय उन्हे
दीवान हाल के बाहर हिन्दू शरणार्थियों का कैम्प देखा। शरणार्थि
ने उन्हें घेर लिया और लगे खरीखोटी सुनाने। बापूजी शांत रहे और बो
"इन्हें तो गुस्सा करने का हक है; ये सताये हुए हैं।" वहां से वेवि
कैंटीन कैम्प देखकर उन्होंने शिविर का निरीक्षण किया।

११ सितम्बर को बापूजी ईर्विन अस्पताल में जख्मियों को देखने
गए। वहां उन्होंने दो वार्ड देखे और घायलों को तसल्ली दी।

१२ सितम्बर को राष्ट्रीय संघ के गुरुजी मिलने आए और उन्होंने
बापूजी को विश्वास दिलाया कि उनके संघ की ओर से कोई ऐसी हरकत
नहीं होगी जो देश के लिए हानिकर हो। उस दिन वह जामा मस्जिद और
निजाम पैलेस में भी मुस्लिम शरणार्थियों से मिले।

१३ तारीख को बापूजी ने पुराने किले और मोतियाखान व ईदगाह
के कैम्प देखे। उस दिन बापूजी की मुस्लिम नेताओं से विस्तार के साथ
बातें हुईं और उन्होंने उनसे चार काम करने को कहे—एक तो यह कि
वह एक बयान देकर यह घोषणा करें कि वे हिन्द-यूनियन के प्रति वफादार
हैं और अगर उनमें से किसी से कोई ऐसी हरकत हो जाय तो देशद्रोह में

गिनी जा सके तो वह सजा का भागीदार होगा। दूसरे वह यह घोषणा करें कि वे दिल्ली छोड़ना नहीं चाहते और पूरा अमन चाहते हैं। तीसरे वह यह आश्वासन दें कि अगर किसी के पास बिना लाइसेंस का हथियार होगा तो उसे वह वापस करा देंगे। चौथे, पश्चिमी पंजाब में अल्पसंख्यकों के साथ किये गए अत्याचारों के लिए वे खेद प्रकट करें।

मौ० अहमद सईद ने यह इच्छा प्रकट की कि बापूजी उनके मोहल्ले में चलकर कुछ दिन रहें। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। मुझे स्थान देखने और ठीक-ठाक करने की आज्ञा दी गई, मगर शीघ्र ही मौ० आजाद और दूसरे मुस्लिम मित्रों की राय हुई कि बापूजी बिड़ला-भवन में ही बैठकर अधिक काम कर सकते हैं। इसलिए मुस्लिम मोहल्ले में जाना मुलतवी कर दिया गया।

१६ सितम्बर को बापूजी बाल्मीकि मंदिर के पास वाले मैदान में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का प्रदर्शन देखने गए। इस प्रदर्शन में बापूजी ने सनातन हिन्दू धर्म का असली स्वरूप समझाया और संघवालों को बताया कि उनका कर्त्तव्य क्या होना चाहिए? उसी दिन उनकी शाम की प्रार्थना शरणार्थियों के किंग्स्वे कैम्प में हुई। वहां बहुत भीड़ थी। प्रार्थना आरम्भ होने पर जब कुरान की आयत पढ़ी जाने लगी तो कुछ लोगों ने विरोध किया और प्रार्थना नहीं होने दी।

बापूजी को दिल्ली आए एक सप्ताह हो गया था। इतने ही दिनों में उनके प्रभाव से शहर की हालत काफी सुधर गई थी और शांति कायम होती जा रही थी।

१७ सितम्बर को बापूजी मजदूरों की बस्ती किशनगंज में प्रार्थना करने गये। हजारों की भीड़ थी। कुरान की आयत पर वहां भी कुछ लोगों ने आपत्ति की। खूब हल्ला मचा, मगर बाद में शांति हो गई। बापूजी का प्रवचन हुआ और प्रार्थना भी हुई।

१८ सितम्बर को बापूजी फैज बाजार, कूचा चेलां और बैरमखां के तिराहे का दौरा करने गये। आसफ साहब के मकान पर उन्होंने करीब १५० मुसलमानों के सामने प्रवचन किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि

सब ठीक हो जायगा।

१९ तारीख को वह इसी इलाके के हिंदुओं से मिले, कूचा ताराचंद में गये और पटौदी-भवन अनाथालय में शरणार्थियों से मिले।

२१ सितम्बर को बापूजी पुल-बंगश में मुसलमानों से मिलने गये और एक कमरे के बरामदे में बैठ कर उनसे बातचीत की। हजारों मुसलमान नीचे खड़े थे। सबने शांति से उनका भाषण सुना। वापसी में वह बाड़ा हिन्दूराव, खारी बावली और चांदनी चौक होते हुए आये। बाड़े के हिन्दुओं ने उनकी मोटर रोक कर कुछ विरोध-प्रदर्शन किया।

दूसरे सप्ताह दिल्ली की हालत और भी सुधर गई। बापूजी इन दिनों कुछ अस्वस्थ थे। उन्हें हरारत हो जाती थी और खांसी चैन नहीं लेने देती थी।

२ अक्तूबर को अंग्रेजी हिसाब से बापूजी का जन्म-दिन था। वह उनकी ७९वीं और आखिरी वर्ष गांठ थी। मैंने उन्हें अपने हाथ के कते सूत की एक धोती भेंट की। बापूजी के जीवन का वह अंतिम वर्ष जिस वेदना और परेशानी में बीता था, इतनी वेदना और परेशानी शायद ही कभी उन्होंने सही हो। उन्हें खांसी काफी थी। कोई उत्सव मनाने का तो प्रश्न ही न था। फिर भी उनके साथी फल भेंट करने और प्रणाम करने आ रहे थे। सुबह से ही दर्शन करने वालों का तांता लगा हुआ था। उन्हें क्या पता कि वे बापूजी के जीवनकाल में उनकी आखिरी वर्ष-गांठ मना रहे हैं। बापूजी के मन को जरा भी शांति नहीं थी। सरदार और अन्य लोग बैठे हुए थे। बापूजी हंसते-हंसते उनसे बोले—"मातम करने वालों से यह भी नहीं कहा जा सकता कि अब जाओ।" सुनते ही सब लोग उठ खड़े हुए।

११ अक्तूबर को देशी तिथि से बापूजी की वर्ष गांठ मनाई गई। बिड़ला-भवन में ही गुजरातियों की एक सभा में बापू ने भाषण किया।

२५ अक्तूबर को बापूजी दिल्ली जेल में प्रार्थना करने गये। वहां उन्होंने आम का एक पेड़ भी लगाया।

बिड़ला-भवन में हर रोज शाम को प्रार्थना होती थी। ३१
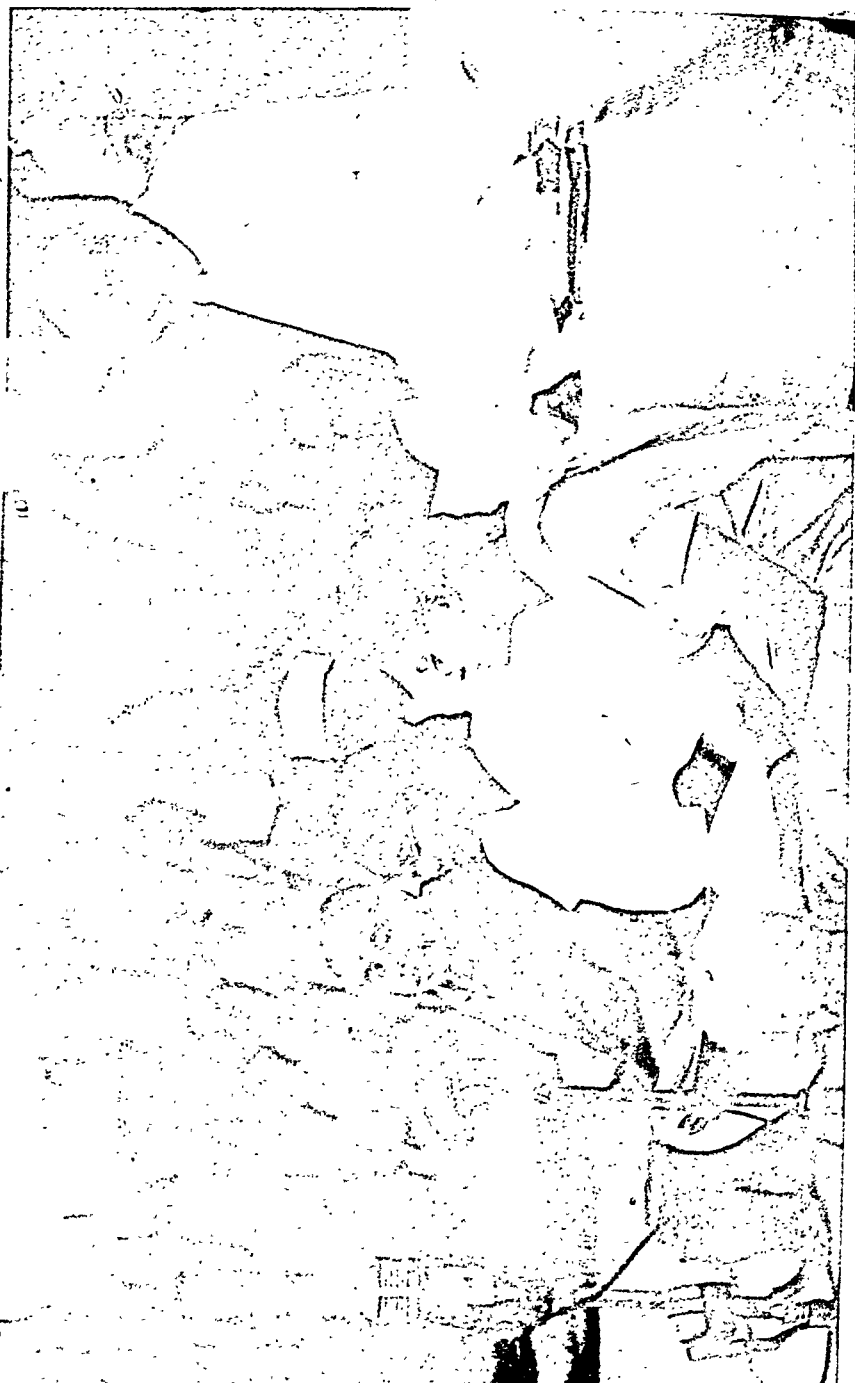
अक्तूबर से यहां भी कुछ लोगों ने कुरान की आयत पर विरोध करना शुरू कर दिया। एक दिन तो प्रार्थना नहीं हुई, लेकिन बाद में विरोध होने पर भी प्रार्थना बन्द नहीं की गई।

७ नवम्बर को बापूजी मुसलमानों के तिहाड़ गांव में गये और उनको बहुत समझाया कि आप लोग यहीं रहिए, लेकिन वे राजी नहीं हुए।

पानीपत से मुसलमान बराबर आते रहते और अपनी दर्दभरी कहानी बापूजी को सुना जाते। बापूजी उनको धीरज देते और वहीं रहने को कहते। मुसलमानों की यह शिकायत थी कि वहां की हकूमत उन्हें रहने नहीं देती। चुनांचे २० नवम्बर को बापू वहां की हालत देखने स्वयं गये। वहांके मुसलमानों और हिन्दुओं को समझा कर वह शाम को वापस आगये। २ दिसम्बर को वहां फिर गये और उन्होंने मुसलमानों को वहीं रहने की सलाह दी, मगर वे राजी नहीं हुए। तब बापूजी ने उनसे कहा कि कम-से-कम पाकिस्तानवालों को पहले से यह सूचना तो भेज दो कि तुम अपनी खुशी से वहां आना चाहते हो ताकि हिन्द यूनियन पर यह इलजाम न रहे कि तुम्हें जबरन भेजा गया।

१२ नवम्बर को दिवाली के दिन बापूजी ने रेडियो पर प्रवचन किया। रेडियो पर यह उनका पहला और अंतिम भाषण था। उनका यह प्रवचन विशेष रूप से कुरुक्षेत्र के शरणार्थियों के लिए था।

१५ नवम्बर को बापूजी ने कांग्रेस महासमिति की बैठक में भाषण दिया और २० नवम्बर को वह कालिका मंदिर का शरणार्थी-शिविर देखने गये। वहां से वापसी पर वह हम सबको अपने साथ गवर्नमेंट हाउस ले गये। उन दिनों गवर्नर-जनरल राजाजी थे। उन्होंने फूल चढ़ाकर बापूजी का स्वागत किया।

२८ नवम्बर को बापूजी गुरु नानक के जन्मोत्सव में शरीक होने सिखों के दीवान में गांधी-ग्राउंड गये। शेख अब्दुल्ला भी साथ थे। वहां उन्होंने एक प्रभावशाली भाषण दिया।

७ दिसम्बर को हरिजन-निवास में आयोजित एक सभा में भाग लेने गये। उन्हीं दिनों वहां चरखा, ग्राम-उद्योग और तालीमी संघ की

बैठकों का आयोजन किया गया था। उन्होंने इन सब में भाग लिया और ९ से १२ तक हर रोज हरिजन-निवास जाते रहे।

१९ दिसम्बर को बापूजी गुड़गांवा जिले के जटासा गांव में मेवों का कैम्प देखने गये और वहां उन्होंने एक बड़ी सभा में प्रवचन किया।

२७ दिसम्बर को वह सम्भालका गांव में प्रार्थना करने गये।

३ जनवरी को बापूजी ने दिल्ली के वेवल कैंटीन में जाकर शाम की प्रार्थना की। वहां के शरणार्थियों ने बड़े भक्ति-भाव से प्रार्थना में हिस्सा लिया और वे पूर्ण शांत रहे।

: १५ :

अंतिम उपवास

इस प्रकार गांधीजी के अनथक प्रयत्नों से दिल्ली में पूर्ण शांति स्थापित हो गई और भारत के मुसलमानों ने आम तौर पर तथा दिल्ली के मुसलमानों ने खास तौर पर पहली बार समझा कि गांधीजी ही उनके सच्चे हितैषी हैं। यही कारण है कि गांधीजी की मौत पर क्या हिन्द और क्या पाकिस्तान के मुसलमान जार-जार रोये और उन्होंने महसूस किया कि इस दुनिया से उनका सच्चा शुभचिन्तक चला गया। बापूजी को खोकर वे समझे कि जितने हितैषी वह हिंदुस्तान के थे उतने ही पाकिस्तान के भी और यदि वह जिन्दा रहते तो दोनों टुकड़ों में एक दिन सच्ची मित्रता कायम हुए बिना न रहती।

इतने पर भी जब रोज के मिलने वाले मुस्लिम भाई गांधीजी से आकर कहते कि अब हमारा दिल्ली में रहना दुश्वार ही नहीं, नामुमकिन हो गया है, हम आपके कहने से ही यहां ठहरे हुए हैं, आप अब हमें क्या करने को कहते हैं, तो गांधीजी के दिल को बड़ी चोट लगती थी। एक दिन एक मुसलमान भाई ने आकर यहां तक कह डाला—"आप मुझे इंग्लैंड भेजने का इन्तजाम करवा दें, क्योंकि मैं राष्ट्रीय मुसलमान हूं। सारी उम्र हिन्द की आजादी के लिए लड़ा हूं और अब देश आजाद हुआ

तो मेरे ही साथियों ने मुझे हिन्द से चले जाने के लिए मजबूर कर दिया है, अब मेरे लिए न यहां जगह है और न पाकिस्तान में। मुझे लंदन भिजवा दीजिए।" इस बात से बापूजी को भारी आघात पहुंचा और दूसरे ही दिन—१३ जनवरी से—उन्होंने उपवास रखने का निश्चय कर लिया।

सोमवार, १२ जनवरी को उनका मौन था। वह बैठे प्रार्थना के लिए लेख लिख रहे थे। किसी साथी को आभास तक न मिला, कानोंकान खबर भी नहीं कि उस क्षण वह क्या निश्चय कर रहे हैं। बीच में नेहरूजी मिलने आए, उन्हें भी कोई इशारा नहीं मिला। उपवास के निश्चय को बापूजी बहुत पवित्र मानते थे, उसे वह ईश्वर-प्रेरित समझा करते थे और इसलिए उसके सम्बन्ध में दलील करना उन्हें पसन्द नहीं था। इस उपवास का निश्चय भी उन्होंने अंतःप्रेरणा से ही किया था।

जब वह लेख लिख रहे थे तो मेरे पास लार्ड माउंटबेटन की पार्टी का निमंत्रणपत्र आया जो दूसरे दिन शाम को होनेवाली थी। वह कार्ड मैंने बापूजी को दिखाया। उसे देखकर वह हंसे और जब मैंने पूछा कि क्या मुझे जाना चाहिए तो उन्होंने इशारे से बताया कि हां, तुम तीनों जाओ। लार्ड माउंटबेटन ने प्यारेलालभाई और डा० सुशीला को भी बुलाया था। मुझे क्या मालूम कि बापू कल से उपवास शुरू करने वाले हैं! सुशीला जब उनके लेख का हिन्दी उलथा करने बैठी तब सारी बातों का पता लगा। बापूजी उपवास रखें और हम पार्टियों में जायं, यह कैसे हो सकता था? मगर वही होकर रहा। बापूजी ने कहा कि तुम्हें जाना ही होगा, वहां भी तो उपवास सम्बन्धी बातें ही होंगी, तुम्हें उन लोगों को मेरे विचार बताने का अवसर मिलेगा। आखिर हम तीनों को जाना ही पड़ा।

सवेरा हुआ। बापूजी भोजन करने के पश्चात उपवास आरम्भ करने वाले थे। दिल्ली कलकत्ता नहीं थी। यहां की स्थिति भिन्न थी और सब लोग परिणाम की ओर से चिन्तित थे। कोई निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता था। सबको बापूजी के इस वाक्य पर भरोसा था कि जबतक प्रभु को उनसे सेवा लेनी है तबतक कोई उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

दर्शकों ने आना शुरू किया। अखवारनवीस और फोटोग्राफरों ने वापूजी को घेर लिया। वह विलकुल शांत और स्थिर थे। सुवह का स्नान कर वह बाहर धूप में पलंग पर आ बैठे। वहीं उनका भोजन लाया गया। आभा ने खिलाना शुरू किया। कोई नहीं जानता था कि वह फिर भोजन कर सकेंगे या नहीं। सबके दिलों में घबराहट थी। बापूजी भोजन करते जाते थे और वात भी। सभी साथी उनके पलंग को घेरकर खड़े थे।

११ बजे, और वापूजी ने भोजन से अपना हाथ खींच लिया। कुछ ही क्षणों पश्चात् प्रार्थना शुरू हुई। नम्यो, अउजुबिल्ला, पारसी प्रार्थना, ईशावास्य, यं ब्रह्मा और 'ओम् असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतंगमय !' (हे प्रभो ! मुझे असत्य से सत्य में ले जा; अंधेरे से उजाले में ले जा; मृत्यु से अमरता में ले जा) का उच्चारण हुआ। फिर एक अंग्रेजी गीत गाया गया और वापूजी का उपवास शुरू हो गया।

दिनभर बापूजी गर्म पानी पीते रहे। आम मुलाकातें वन्द कर दी गईं थीं, फिर भी उनको काफी वोलना पड़ रहा था। खास-खास आदमी तो मुलाकात करने आते ही थे। शाम को वह प्रार्थना करने भी गये।

दूसरे दिन भी यही सिलसिला रहा। रात के समय बिड़ला-भवन के बाहर नारों की आवाज दूर से आती सुनाई दी। नजदीक आने पर कानों में ये शब्द पड़े—"गांधी को मरने दो! खून का वदला खून से लेंगे!"

ठीक उसी समय नेहरूजी और सरदार साहब बिड़ला-भवन से बाहर निकल रहे थे। नारा सुनकर नेहरूजी मोटर से उतर पड़े और ललकार कर बोले—"कौन कहता है कि गांधी को मरने दो? आओ, पहले मुझे मारो!" सुनकर लोग भाग खड़े हुए और थोड़ी देर बाद शांति हो गई।

दूसरे दिन से वापूजी ने कातना बन्द कर दिया। तीसरे दिन कमजोरी और भी बढ़ गई और वह प्रार्थना के लिए न जा सके। उन्होंने अपना प्रवचन लिखवा दिया और पलंग पर लेटे-लेटे ही कुछ शब्द लाउड-

स्पीकर पर कहे। प्रार्थना के बाद सैकड़ों की संख्या में लोग दर्शन करने आये।

चौथा दिन भी इसी प्रकार बीत गया। इस बार उपवास में मतली न थी। वह पानी पीते रहे, मगर पानी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। कमजोरी और भी बढ़ गई और वातावरण में तब्दीली आगई। लोगों को उनके लिए चिन्ता होने लगी और उपवास को शीघ्र समाप्त करीने के लिए जोरों के साथ प्रयत्न होने लगे।

पांचवें दिन बापूजी के गुर्दे खराब होने लगे। पेशाब में कमी हो गई। वजन घटना बन्द हो गया। जिगर का काम भी खराब होने लगा। सब लोगों की चिन्ता और घबराहट बढ़ गई। सब ओर से उपवास छोड़ने के लिए अनुरोध होने लगा। हजारों तारों से घर भर गया। शाम की प्रार्थना में दर्शकों की संख्या हजारों तक पहुंच गई। बापूजी बरामदे में पड़े रहते और लोग दर्शन करके चुपचाप चले जाते।

छठे दिन अर्थात् १८ जनवरी को सब समुदायों और वर्गों के नेता व जिम्मेदार व्यक्ति राजेन्द्र बाबू की कोठी पर जमा हुए और उन्होंने बापूजी द्वारा पेश की गई सातों शर्तें स्वीकार कर प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। इसके बाद सब लोग मिलकर बापूजी से उपवास खोलने का अनुरोध करने आये। उनके सामने जब सब लोगों ने फिर से सातों शर्तों पर अमल करने की पूरी चेष्टा करने का वचन दिया तब कहीं जाकर बापूजी ने उपवास तोड़ने की रजामन्दी जाहिर की। सबने संतोष की सांस ली। चेहरों पर से चिन्ता की रेखाएं दूर हुईं और ईश्वर का धन्यवाद किया गया। प्रार्थना हुई। १२-४५ पर मौलाना आजाद ने बापूजी को मौसम्बी के रस का गिलास पीने को दिया। उपस्थित व्यक्तियों को केले और नारंगी के टुकड़ों का प्रसाद बांटा गया। उस दिन शाम की प्रार्थना में कई हजार की उपस्थिति थी। बापूजी वहां जाना चाहते थे, मगर उसी वक्त जोर से वर्षा आगई और वह कमरे से निकल न सके। वहां लेटे-लेटे ही उन्होंने दर्शन दिये और उसी दिन ही कातना शुरू कर दिया।

१९ जनवरी से बापूजी ने कुर्सी पर बैठकर प्रार्थना में जाना आरम्भ कर दिया।

: १६ :

मृत्यु की छाया

२० जनवरी को वह प्रवचन करके चुके ही थे कि अचानक धड़ाके-से सारी इमारत हिल गई। वह अपनी जगह निश्चल बैठे रहे। उन्होंने सोचा कि कहीं फौजी सिपाही अपना अभ्यास कर रहे हैं, किंतु जब उनको बताया गया कि यह तो बम फटा है और मदनलाल नामका एक नौजवान गिरफ्तार भी कर लिया गया है और उसकी जेब से एक हथ-गोला भी निकला है तो सारी बात उनके ध्यान में आ गई। रात को सोते समय मैंने उनके पास जाकर बताया कि मालूम हुआ है, इसके पीछे बहुत बड़ी साजिश है और इसमें कई आदमियों का हाथ है। सुनकर बापूजी ने बात हंसी में नहीं उड़ाई, बल्कि उस पर विश्वास कर लिया।

उसी शाम से वहां फौजी पहरा लगा दिया गया और खुफिया पुलिस के कुछ बेवर्दी सिपाही वहां घूमने लगे। एक दिन घनश्यामदासजी ने बापूजी से कहा—"आपके लिए इतनी मिलिटरी रखी जाय, यह मुझे तो आपके अहिंसा के सिद्धांत के अनुसार शॉकिंग (ठेस पहुंचाने वाला) लगता है।" बापूजी ने इस बात का जो उत्तर दिया उसको सुनने की मुझे भी आशा न थी। मैं तो समझे बैठा था कि वह घनश्यामदासजी की बात का समर्थन करेंगे, किंतु उन्होंने कहा—"घनश्यामदास, तुम्हें यह जितना शॉकिंग लगता है, उतना मुझे नहीं लगता। इन लोगों को (अर्थात् सरदार आदि को) हकूमत चलानी है। उनकी जिम्मेदारी बहुत बड़ी है।"

इससे पता चलता है कि बम की घटना को बापूजी साधारण नहीं मानते थे। पर्दा तो हमारी भी बुद्धि पर पड़ गया था कि सब कुछ देखते-सुनते हुए भी हमने ध्यान नहीं दिया। मन में एक दिन भी तो यह विचार नहीं आया कि कोई गांधीजी को भी मार सकता है। हम तो यही सोचे बैठे थे कि बापूजी की गोद में हम यहां से जायेंगे; हमें क्या चिन्ता ?

अब जब मैं वाल्मीकि मंदिर की घटनाओं का और बिड़ला-भवन

की इससे पहले की कई बातों का मेल मिलाता हूं तो हाथ मलकर रह जाता हूं कि इस ओर ध्यान क्यों न दिया !

उन दिनों ऐसा लगता था जैसे बापू का दिल बुझ चुका है। भय नाम की कोई चीज उनके कोष में नहीं थी, इसलिए मरने से वह डरते नहीं थे और उनका यह दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर को जब तक उनसे काम लेना है, कोई शक्ति उनको मार न सकेगी, चाहे गोली चले, चाहे तोप चले, चाहे बम बरसें और चाहे एटम बम ही क्यों न गिरे ! साथ ही उन्हें यह भी विश्वास था कि जिस क्षण इस दुनिया में उनका काम नहीं रह जायगा, कोई भी शक्ति उन्हें बचाकर नहीं रख सकेगी। औरों की तो और जानें, मगर मैं तो उनकी इस बात में सोलह आने विश्वास करता था। इसीलिए मैं हद से ज्यादा निश्चित था। मैं उनके कई उपवास देख चुका था। डाक्टरों के हाथ-पैर फूल गये, मगर ईश्वर ने उन पर आंच न आने दी। उन पर बम का यह प्रहार भी पहला ही नहीं था। कई प्रहार पहले हो चुके थे और वह बेलाग बच गये थे। मगर अब मैं यह देख रहा था कि वह रोज-रोज अधिकाधिक उदासीन होते जा रहे थे। कहने को वह नेहरूजी से घंटों बातें करते थे, मगर अपनी ओर से कुछ कहना पसन्द नहीं करते थे। मैं उनसे कहता कि यह खराबी हो रही है, वह खराबी हो रही है, आप कहिए न उनसे, किंतु वह निरासक्त भाव से यही उत्तर देते–"यदि उनकी ओर से बात छिड़ी तो मैं कह दूंगा। अपनी ओर से नहीं।" यों तो उन्होंने कभी भी अपनी बात किसी पर नहीं लादी। हरएक को अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूरी आजादी दी। वह तो अपनी सलाह भर देते थे और साथ-ही-साथ यह भी कह देते थे कि करो वही जो तुम्हें जंचे। मगर उनकी उदासीनता दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। वह एक प्रकार से अपना काम समेटते-से जा रहे थे। हकूमत के हद से ज्यादा बढ़े हुए खर्च की ओर मैंने उनका ध्यान कई बार दिलाया। वह मुझसे पूरी तरह सहमत थे, मगर कहा करते थे कि जिनके पास लाखों खर्च करने को न थे उनको करोड़ों खर्च करने को मिल गये हैं, क्या किया जाय ? वह किसीके काम में दखल नहीं देते थे। लोग ऐसा मानते थे कि गांधीजी की

सलाह के बिना पत्ता नहीं हिल सकता, मगर कितनी ही बातों का उनको पता तक नहीं होता था और वह अखबार में से सुनने के बाद ही मालूम होता था कि यह बात ऐसे हो गई। मेरे विचार से तो वह इन दिनों बिलकुल निरासक्त बन गये थे। उनसे जब कुछ पूछा जाता तब वह अपनी राय दे देते। वरना अपने काम से काम। पहले जब कभी बापूजी के पास इस आशय का पत्र आता कि आपका काम खत्म हो चुका, अब आप अवकाश ग्रहण कर हिमालय चले जायं, तो वह हंस देते। मगर जब २९ जनवरी को बन्नू का एक शरणार्थी, जिस पर गुजरात स्टेशन पर हमला हुआ था, बापूजी से मिलने आया और उसने उनसे बड़े अपमान-सूचक शब्दों में मैदान से हट जाने के लिए कहा, तो मैंने देखा कि बापूजी के हृदय पर उसका बड़ा गहरा असर हुआ। दूसरे दिन मैंने मास्टर तारासिंह का बयान पढ़ कर सुनाया जिसमें उन्होंने भी यही बात कही थी। बापूजी पर उसका भी असर पड़ा और उसके कुछ घंटों बाद ही वह सचमुच सदा के लिए मैदान से हट गये।

उपवास खोलने के लिए बापूजी ने जो सात शर्तें रखी थीं, उनमें सबसे पहली यह थी कि महरौली में हजरत कुतुबुद्दीन औलिया की जो दरगाह है उसका उर्स सदा की तरह शांति से हो और मुसलमान वहां बेखौफ जा सकें। २७ जनवरी को उर्स था। बापूजी सुबह दस बजे अपने सब साथियों के साथ उर्स में शरीक होने गये। बिड़ला-भवन से बापूजी की यह आखिरी यात्रा थी। मजार पर जाकर उन्होंने अउजूबिल्ला पढ़वाया और बाहर आकर कई हजार के मजमे में भाषण दिया। उन्होंने वहां की पुरानी इमारतें देखीं और १२ बजे वह बिड़ला-भवन लौट आये।

२९ जनवरी को वह रोज की तरह प्रार्थना में गये। वह उनकी अंतिम प्रार्थना थी।

: १७ :

निर्वाण-संध्या

३० जनवरी की बात मैं क्या लिखूं? मैंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि किसी दिन बापूजी का वियोग भी सहना पड़ेगा। कम-से-कम मेरे सामने तो वह नहीं जायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास था। मैंने एक उन्हींका पल्ला पकड़ा था और वही मेरे सर्वस्व थे।

शुक्र के प्रातःकाल की बात है। सदा की तरह ३॥ बजे उठकर उन्होंने मुंह साफ किया। पौने चार बजे प्रार्थना हुई। बापूजी बरामदे में बिछे बिस्तर पर से उठ लड़कियों का सहारा लेकर कमरे में अपने बैठने के स्थान पर आये और काम में लग गये। पौने पांच बजे उन्होंने शहद और नीबू का रस और गर्म पानी पिया और ५ से ६ बजे के बीच में १६ औंस मौसम्बी का रस लिया। काम करते-करते ही वह सो गये।

उस दिन ७ बजे बापूजी ने श्रीमती राजन नेहरू को मिलने का समय दे रखा था। वह अमरीका जा रही थीं। बापूजी ने उनसे बातें कीं और फिर वह कमरे में टहलने लगे। उपवास खोलने के बाद उनमें इतनी शक्ति नहीं आई थी कि वह बाहर टहल सकते।

८ बजे बापूजी मालिश करवाने आये। मालिश पास वाले मकान के कमरे में होती थी। मुझे क्या पता था कि मैं आज अंतिम बार उनकी मालिश कर रहा हूं! बापू अखबार पढ़ते रहे। बंगला का अभ्यास आजकल वह दूसरे समय करते थे, वरना इस वक्त वह हर रोज आभा से बंगला सीखा करते थे।

आध घंटा मालिश कराने के बाद बापूजी स्नान के लिए चले गये। चलते समय उन्होंने प्यारेलालजी से कहा—"मैंने आज सुबह ही बैठकर कांग्रेस के लिए जो रूपरेखा बनाई है उसे अच्छी तरह देख जाओ। समय कम होने के कारण मैंने उसे जल्दी में लिखा है, जहां घटाना-बढ़ाना हो ठीक करदो और जो पूछना हो पूछ लो।"

स्नान करके ९॥ बजे उन्होंने भोजन किया। उपवास के बाद उन्होंने अभी रोटी शुरू नहीं की थी। जिगर में कुछ खरावी के कारण डाक्टरों ने मना कर रखा था। उन्होंने उवली सब्जी, १२ औंस दूध, मू ी, टमाटर, सलाद और चार सन्तरों का रस लिया। भोजन के समय प्यारेलालजी और उनके एक मित्र ने बातें कीं और बापूजी के अफ्रीका के परिचित सोहरावजी अपने परिवार के साथ आकर उसी समय उनसे मिले।

भोजन के बाद वह नित्य की तरह तलवों पर घी की मालिश करवा कर सो गये। १२ बजे उठकर उन्होंने गरम पानी और शहद लिया। फिर रोज के मिलनेवाले मौलानाओं से बातें हुई। मौ० हिफजुर रहमान और अहमद सईद अपने कुछ साथियों के साथ रोज आते थे। उनसे सेवाग्राम जाने की बात चली। २ फरवरी को वहां एक सम्मेलन बुलाया गया था। बापूजी उसमें शरीक होने जाने वाले थे और १४ फरवरी को दिल्ली लौट आना चाहते थे। बापू ने कहा—"आप लोगों की इजाजत के बिना तो मैं जाना नहीं चाहता। मौ० आजाद ने इजाजत दे दी है, आप क्या कहते हैं ?" इस पर मौलाना हिफजुर रहमान बोले—"आप हो आवें। आपकी गैर-मौजूदगी के १२ दिनों में हमें भी पता लग जायगा कि यहां की हालत क्या रहती है।" इसपर बापू ने वर्धा जाने का निश्चय कर लिया।

इसके बाद बापूजी ने श्री सुधीर घोष और प्यारेलालजी से बातें कीं। फिर वह शौच गये और वहां से आकर उन्होंने पेट पर मिट्टी की पट्टी लगवाई। आभा और मनु पैर दबाती रहीं। धूप से सिर को बचाने के लिए आज भी उन्होंने नवाखालीवाली टोपी पहन रखी थी।

डेढ़ बजे बापूजी ने चांदवानी से कुछ खबरें सुनीं और फिर मैंने मास्टर तारासिंह का वह बयान पढ़ कर सुनाया जिसमें उन्होंने गांधीजी को सेवा-क्षेत्र से हट जाने की सलाह दी थी। बापूजी ने गाजर और नीबू का रस लिया। २ बजे कुछ अंधे आये। उनको रहने का ठीक स्थान नहीं मिलता था। उनके लिए बापूजी ने कस्टोडियन से मिलने को कहा। इसके बाद उन्होंने इलाहाबाद के दंगे की रिपोर्ट सुनी।

२॥ बजे से मुलाकातें शुरू हो गईं। उस दिन मैं इत्तफाक से करीब-

करीव सभी मुलाकातों में शरीक था। पहले पंजाव के चौ० वदलूराम और शेरसिंह मिलने आये। इन दोनों की वातचीत हरिजनों के सम्वन्ध में थी। २॥ वजे सिन्ध के आचार्य मलकानी और डा० चोइयराम गिडवानी आये। इनके वाद लंका के प्रतिनिधि डी० सिलवा अपनी पुत्री-सहित मिलने आये। १४ फरवरी को लंका स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला था वे लोग उस अवसर के लिए वापूजी का सन्देश लेने आये थे। उनकी लड़की ने वापूजी के दस्तखत लिये। यह उनके अंतिम दस्तखत थे। तीन वजे प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी आये। वह अपनी एक पुस्तक वापूजी को भेंट करने आये थे। उन्होंने वताया कि जो वातें वापूजी आज कहते हैं महात्मा वुद्ध के जमाने में भी कही गई थीं। उन्होंने कुछ चित्र भी दिखाये। ३। पर फ्रांस के एक फोटोग्राफर ने उन्हें अपने चित्रों की पुस्तक भेंट की। ३॥ पर पंजाव प्रजामंडल की ओर से वृषभान और उनके तीन साथी आये। ३॥। पर महाराज निहालसिंह आये। १५ तारीख को एक वड़ी इत्तहाद सभा होने वाली थी, उसका प्रधान किसको वनायें यह पूछने आये थे। वापूजी ने राजेन्द्र वावू को सभा का प्रधान वनाने की सलाह दी और कहा कि मैं स्वयं सभा के लिए सन्देश दूंगा और १४ को वर्धा से लौट आऊंगा।

४ वजे मुलाकातें खत्म हुई वाहर धूप में से उठ कर वापूजी मेरा सहारा ले अंदर कमोड पर जाने लगे। मुझसे वोले—"कल वर्धा जाने के लिए रेल का प्रवन्ध करवाओ। सरदार से मिलकर वह जैसा कहें करो।" प्रो० राधाकुमुद मुकर्जीकी पुस्तक के लिए उन्होंने कहा—"इसे विशन से कहकर साथ रखवा देना।"

मैंने कहा—"तो क्या आप मुझे साथ न ले चलेंगे ? मैं तो १९४२ के वाद सेवाग्राम गया ही नहीं हूं।"

"मैं जानता हूं, मगर तुम्हारा काम दिल्ली में है।" वापूजी ने उत्तर दिया। इतना कहकर वह स्नानगृह में चले गए। उनके साथ यही मेरी अंतिम वातचीत थी।

मैं कमरे के वाहर निकला। वर्धा के लिए रेलगाड़ी का प्रवन्ध करवाना था। सामने से सरदार पटेल आते दिखाई दिए। उनसे मैंने

बापूजी के वर्धा जाने की बात कही। उन्होंने पूछा कि बापूजी कहां हैं? मैंने बताया, वह कमोड पर गए हैं। इस पर वह मेरे साथ बाहर टहलने लगे और थोड़ी देर उनसे बातें होती रहीं।

४। से बापूजी सरदार पटेल के साथ बातों में व्यस्त हो गए और आभा उन्हें भोजन करवाने लगी।

बापू का भोजन हरिराम तैयार करता था और आभा भोजन करवाती थी। इस वक्त उन्होंने १४ औंस बकरी का दूध, १४ औंस सब्जी का रस और ३ सन्तरे लिये।

पौन घंटा बीत गया। घड़ी की सुई पांच के अंक को पार कर गई। प्रार्थना का समय बीता जा रहा था, मगर बातें खत्म होने पर नहीं आती थीं।

आखिर बापूजी उठे। उन्होंने अपनी चप्पल पहनी और वह कमरे से बाहर निकले। सदा की तरह उनके दोनों ओर दोनों लड़कियां थीं, दाईं ओर आभा और बाईं ओर मनु। उनके कंधों पर बापूजी के हाथ थे। पीछे मैं, सरदार गुरबचनसिंह, नंदलाल मेहता तथा बिड़ला-भवन के अन्य जन चल रहे थे। डा. सुशीला कुछ दिनों से बहावलपुर गई हुई थीं।

दस मिनट की देरी हो गई थी। बापूजी के कदम प्रार्थना-स्थल की और तेजी से बढ़ रहे थे। किसे पता था कि उतनी ही तेजी के साथ उनके जीवन का सूर्य अस्त होता आ रहा था!

बापूजी सीढ़ियां चढ़कर चबूतरे पर पहुंचे। रोज की तरह दर्शक बड़े अदब से कतार बांधे, रास्ता बनाये खड़े थे। बाईं ओर से किसी ने कुछ कहा। बापूजी ने भी उसका कुछ उत्तर दिया। वह और आगे बढ़े। उनके दोनों हाथ लड़कियों के कंधों से उठकर नमस्कार करने को जुड़ गए। वह थोड़ी दूर और आगे बढ़े। मनु ने अपनी दाईं ओर से किसी को आगे बढ़ते देखा। वह पैर छूने आ रहा है, यह सोचकर उसने हाथ से उसे रोकना चाहा, मगर उसी क्षण उस आदमी के धक्के से मनु के हाथ में से बापू की नोटबुक, माला और थूकदानी जमीन पर गिर पड़ी। उन्हें उठाने वह नीचे को झुकी। अचानक तीन बार ऊंची आवाज हुई। धांय, धांय,

थांय ! मैं सिर झुकाये पीछे चला आ रहा था, आवाज सुनकर आगे बढ़ा। निगाह पड़ी तो बापू की धोती पर खून की धारा बहती दिखाई दी और क्षण भर बाद ही वह आभा की गोद में गिर पड़े। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि बुद्धि साथ न दे सकी।

गंगा के समान जिस पवित्र शरीर को हम सदा फूलों से भी अधिक सम्हाल कर रखते थे और मन में यही चाहा करते थे कि वह शरीर हमारे ऊपर से होकर चला जाय मगर उसे कोई कष्ट न होने पाये, वही कोमल शरीर उस वक्त घास और गीली मिट्टी पर पड़ा हुआ था। बापूजी की बाईं टांग फैली हुई थी, दूसरी मुड़ गई थी। दोनों लड़कियों की गोद में उनका सिर था। चेहरा उनका पीला पड़ गया था।

गिरते समय उनके मुंह से उनके प्यारे 'राम' का नाम, जो सदा उनके हृदय में बसता था, निकला। दो बार उन्होंने 'हे राम' पुकारा। उनकी आंखें घूमीं, जबान घूमी, होठ फड़के और वह सदा के लिए शांत हो गए—निर्वाण-पद को प्राप्त हो गए।

भगवान् कृष्ण ने कहा था— "अन्तकाल में मेरा ही स्मरण करते-करते जो देह त्याग करता है वह मेरे स्वरूप को पाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो अनन्य चित्त से नित्य और निरंतर मेरा स्मरण करता है वह नित्य मुक्त योगी सहज में मुझे पाता है। परमसिद्धि को प्राप्त हुए महात्मागण मुझे प्राप्त करके दुःखों के घर अशाश्वत पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करते।"

भगवान् का यह कथन बापू जैसी महान् आत्माओं के लिए ही है, इसमें क्या संदेह है ? हर रोज सायंकाल की प्रार्थना में स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को स्मरण करते हुए अंत में वह कहा करते थे, "हे पार्थ ! ईश्वर को पहचानने वाले की स्थिति ऐसी होती है (जैसी दूसरे अध्याय के ५५ से ७१ श्लोक तक बताई है)। उसे पाकर फिर वह मोह के वश नहीं होता और मृत्युकाल में भी ऐसी ही स्थिति टिके तो वह ब्रह्मनिर्वाण पाता है।" बापूजी उसी ब्रह्मनिर्वाण-पद को प्राप्त हो गए।

बापूजी की इच्छा थी कि वह बहादुरी के साथ मरें। बम-दुर्घटना के बाद उन्होंने २१ जनवरी की शाम को अपने प्रवचन में कहा था, "आप भी

भगवान् का नाम लेते हैं। हमला हो, कोई पुलिस भी मदद पर न आवे, गोलियां भी चलें और तब भी मैं स्थिर रहूं और राम नाम लेता और आपसे लिवाता रहूं, ऐसी शक्ति ईश्वर मुझे दे, तब मैं धन्यवाद के लायक हूं। यही बात बापूजी ने २८ जनवरी को, निर्वाण के दो ही दिन पहले, राजकुमारी बहन से कही थी। राजकुमारीजी ने बापूजी से पूछा—"क्या आज भी प्रार्थनासभा में लोगों ने शोर मचाया था?" बापूजी ने उत्तर दिया—"नहीं, लेकिन क्या तुम्हारे प्रश्न का आशय यह है कि तुम मेरे लिये चिन्ता कर रही हो? यदि मुझे किसी पागल आदमी की गोली से मरना है तो मुझे हंसते-हंसते मरना चाहिये। मेरे अंदर कोई रोष न हो और ईश्वर मेरे हृदय में तथा होठों पर रहे।"

ईश्वर शायद उनकी इस इच्छा को खड़ा सुन रहा था, तभी तो उसने इसे पूर्ण करने में इतनी तत्परता दिखाई।

बापूजी प्रार्थना-स्थल पर भले न पहुंच सके हों, मगर वह प्रार्थनामय थे। उनका मन अपने प्रभु में तल्लीन था और उसीका नाम पुकारते-पुकारते वह उसीमें लीन हो गए।

यह सब काण्ड पांच-सात मिनट में ही हो गया। उस समय ५ बज कर १७ मिनट हुए थे। चारों ओर से भीड़ ने घेर लिया। हाहाकार मच गया। लड़कियां बापू को पुकार-पुकार कर रोने लगीं और जनता को तो मानो काठ मार गया। मैं डाक्टर की तलाश में भागा; किन्तु दुर्भाग्यवश उस समय वहां कोई डाक्टर न था।

करीब पांच मिनट बाद हम लोग बापूजी को उठाकर कमरे में ले गए। उनके पैर की एक चप्पल गायब हो गई थी और उनकी ऐनक का भी पता न था। मैं सरदार की कोठी पर भागा गया, उन्हें सारी बात बताकर अपने साथ बिड़ला-भवन लाया और तुरंत ही डाक्टर लेने विलिंगडन अस्पताल चला गया। वहां एक डाक्टर था तो सही, मगर उसने इतनी लापरवाही दिखाई कि मेरा वहां खड़ा रहना कठिन हो गया। मैं फौरन बिड़ला-भवन की ओर लौटा। रास्ते भर मन में यही प्रार्थना करता रहा कि बापूजी को कुछ हुआ न हो और वह जिन्दा मिलें।

वापस आकर में जल्दी से उनके कमरे घुसा। कुछ डाक्टर वहां पहुंच चुके थे और निराशा से सिर हिला रहे थे। सरदार बुत बने, शोकसागर में डूबे, उनके पास बैठे थे। सिसकियों के बीच गीता-पाठ की ध्वनि आ रही थी। सब देखकर मैंने समझ लिया कि हमारा भाग्य फूट गया और बापूजी सचमुच हमें छोड़कर चले गए।

कमरे में आभा बापूजी का पवित्र सिर अपनी गोद में लिये बैठी थी। देवदास जी आए और बापूजी के हाथों को अपने हाथों से पकड़कर बिलख-बिलखकर रोने लगे। सरदार ने और नेहरूजी ने उन्हें सम्हाला। कमरा आगन्तुकों से भर गया। बाहर लोग अपने बापू का अंतिम दर्शन करने के लिए पागल हो रहे थे।

कमरे के भीतर सन्नाटा छाया हुआ था। नेहरूजी महान् दुःख का अनुभव करते हुए सिर झुकाये बैठे थे।

थोड़ी देर बाद मैंने आभा को इशारा किया कि क्या मैं बापूजी का सिर अपनी गोद में ले सकता हूं? उसने अपना घुटना हटा लिया और अब बापू की गर्दन मेरी गोद में थी। कुछ क्षणों के लिए मैं विचारहीन हो गया। मेरी आंखों में आंसू न थे। मैं अपने से पूछने लगा कि मैं जोर-जोर से रोता क्यों नहीं? क्या मुझे बापू से प्रेम न था? क्या उन्होंने मुझे अपने पुत्र की तरह नहीं माना था? क्या मैं मूढ़ बन गया हूं, या हृदयविहीन हो गया हूं? मगर कुछ बूंदों के सिवा मेरी आंखों में आंसू न आ सके। मेरे पास यह सोचने को रह ही न गया था कि क्या हो गया। सर्वस्व लुटा कर मैं पत्थर बन गया था।

बाहर कोलाहल बढ़ने लगा। शीशे के किवाड़ों पर धक्के पड़ने लगे। इतनी भीड़ को दर्शन कैसे करवाया जाय? बापूजी तख्तेपर लेटे हुए थे। पास के बरामदे में मेज रखी गई और उनका तख्ता उठा कर मेजों पर रख दिया गया। लेकिन वह प्रबंध ठीक नहीं रहा। इतनी घनी भीड़ को रोकना कठिन प्रतीत हुआ।

तब हम लोग शववाले तख्ते को उठाकर बिड़ला-भवन की छत पर ले गए। वहां बापूजी के शव को बैठाकर नीचे खड़े दर्शकों को दर्शन

करवाये गए। सब लोग सिर झुकाकर हाथ जोड़कर विदा होने लगे।

रात के दो बज चुके थे। बापूजी को अन्तिम स्नान करवाना था। स्नानगृह में हरिराम ने ठंढे पानी से टब भर दिया। एक और तख्ता टब के पास बिछा दिया गया। बापूजी का तख्ता स्नानगृह के दरवाजे के पास ले जाया गया। अभी कुछ दिन पहले उपवास के दिनों में मैं इसी शरीर को कुर्सी पर बैठा कर बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता गर्म पानी के टब में उतारा करता था। आज उसी शरीर को हमने अपनी छाती पर पत्थर रखकर टब के पास बिछे हुए तख्ते पर नीचे लिटा दिया। मैंने खून से भरे हुए कपड़ों को धीरे-धीरे उतारा और उन्हें देवदासजी के हाथों में सौंप दिया। वह गर्म अलवान, जो आस्ट्रेलिया के ऊन से बुनी हुई थी, तीन ज़गह गोलियों के दाग से जल गई थी। धोती और सूती चादर खून से तर थी। छोटा रूमाल कमर की रस्सी के साथ लटकता हुआ खून से भर गया था। अलवान पर मिट्टी और घास लगी हुई थी।

बापूजी का शव पटड़े पर रखा था। टब में से मैंने ठंढे पानी का बर्तन भरा और उसे बापू पर डालने को हाथ आगे बढ़ाया। हाथ रुक गया। बापूजी तो कभी ठंढे पानी से नहाते न थे। रात को दो बजे, जनवरी की इस ठंढी रात में यह बर्फ-सा ठंढा पानी उनपर कैसे डालूं? उनका शरीर तो वही था। हाय, आज हिन्द का हृदय-सम्राट् कैसा निश्चेष्ट बना एक साधारण तख्ते पर लेटा था! मुख से चीख निकल ही तो गई।

आखिर उसी ठंढे पानी से उनका शरीर साफ किया गया। छाती पर दाईं ओर तीन गोलियों के निशान थे, त्रिकोणाकार। दो गोलियां पीठ में पार निकल गई थीं। तीसरी अंदर ही समा गई थी। बापूजी की पीठ मिट्टी से भरी थी। जख्मों से अब भी खून बह रहा था। मैंने शरीर को साफ किया और गंगाजल से उस पवित्रतम शरीर को स्नान करवाया। फिर उसे तौलिये से पोंछ कर वह धोती पहनाई जो पूज्य बापूजी को मैंने इसी जन्म-दिन पर भेंट की थी।

तख्ता बीच कमरे में बिछा दिया गया और उसपर सफेद खादी की चादर फैला दी गई। बापूजी का शव उसपर लाकर रख दिया गया।

बापू : अनंत निद्रा में

उनका आधा शरीर मैंने अपने हाथ के कते सूतकी खादी से ढक दिया और दूसरा टुकड़ा उनके कंधों पर गर्दन के नीचे रख दिया। उनके गले में मैंने अपने हाथ के सूत की माला पहनाई और जिस माला से वह रोज रामनाम जपते थे, उसे भी उनके गले में पहना दिया। मस्तक पर, गले में और छाती पर मैंने चन्दन व केसर का लेप किया, कुमकुम का तिलक लगाया और चारों ओर गुलाब के फूल बिछा दिये। उनके सिरहाने की ओर फूल की पंखड़ियों से लिखा गया 'हे राम !' पांव की ओर लिखा गया—'ॐ' ! चारों कोनों पर सुगंधि सुलगा दी गई और सिरहाने पर एक दीपक जला दिया गया।

बापूजी का चेहरा तेजोमय था। वह जैसे सोया करते थे, वैसे ही लेटे हुए थे। ऐसा लगता था जैसे अब सांस चली, अब सांस चली ! यह लगता ही नहीं था कि अब वह संसार में नहीं हैं।

मगर सचाई को कौन बदल सकता था ? हजारों मर्द, औरत और बच्चे अन्तिम दर्शन करने आ रहे थे। वे चौखट पर मस्तक नवाते, फूल और पैसे चढ़ाते और विदा हो जाते।

रोज की तरह सुबह के ३॥ बजे। बापूजी के तकिये के नीचे रखी घड़ी टक-टक करके उनको जगा दिया करती थी और वह जगते ही 'ब्रज-किशन' पुकारकर पहले मुझे, फिर 'मनु,आभा, शीला' कहकर तीनों लड़कियों को जगाते थे। मैं उनके बाएं हाथ और लड़कियां दाएं हाथ सोती थीं। किसी दिन देर से सोने के कारण अगर समय पर बापूजी की आंख नहीं खुलती और हम सब उठ बैठते तो चुपके-चुपके हम कानाफूसी करने लगते और सोचते, बापू को जगाएं या नहीं। न जगाएं तो प्रार्थना का समय हो रहा है, वह कैसे टल सकता है ? आज्ञा थी कि आंख न खुले तो जगा देना। एक ओर यह आज्ञा, दूसरी ओर यह विचार कि वह थोड़ा और आराम कर लें तो अच्छा हो। मगर प्रार्थना तो समय पर होनी ही चाहिए। उठाने की जिम्मेदारी मेरी थी। बहुत धीमे से उनके कान के पास जाकर कहता—'बापूजी ! बापूजी !' वह गहरी नींद में सोये होते। मैं कुछ क्षण रुक जाता, मगर प्रार्थना के समय का खयाल आजाता और अबकी बार

ज़रा जोर से पुकारता—'बापूजी !' और वह तत्क्षण उठ बैठते।

किन्तु आज न वह उठे और न मुझे आवाज दी, न अपनी बेटियों को ही पुकारा। उलटा हम सब मिलकर इतने जोर-जोर से उन्हें पुकार रहे थे और फिर भी वह नहीं उठ रहे थे। उन्हें आज क्या हो गया? वह जगते क्यों नहीं?

प्रार्थना होने लगी। पर आज उन्होंने न 'नम्यो' कहा, न 'दो मिनट की शांति'। यह सब कहनेवाला आज स्वयं अनन्त शांति की गोद में सो रहा था और हम सब उसके चारों ओर क्षीण स्वर से उच्चारण कर रहे थे—

"ईशावास्यमिदं सर्वम् यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥"

'इस जगत में जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बनाया हुआ है, इसलिए तू ईश्वर के नाम से त्याग करके यथाप्राप्त भोग किया कर। किसीके धन की वासना मत कर।'

प्रार्थना समाप्त हुई। गीता-पारायण हुआ। ग्रंथ साहब का पाठ हुआ। पौ फटने लगी। छः बज गए। बाहर दर्शकों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। देश-देशान्तर के एलची और सरकारी जन श्रद्धा के फूल भेंट करने लगे। दर्शकों के निमित्त उस पवित्रतम शव को फिर एक बार बिड़ला-भवन की छत पर ले जाना पड़ा। अब ११ का समय हो गया था। बाहर उनके ले जाने को फौजी रथ सजाया जा रहा था। उन्हें हम नीचे लाए। तिरंगे झंडे से शव ढक दिया गया। मुंह खुला था। कंधों पर रख कर हम उन्हें बाहर लाये और फूलों की सेज पर रख दिया। सरदार आज भी बुत की तरह उनके पास बैठ गए। दूसरे प्रियजन कुछ रथ पर, कुछ रथ के आगे हुए। ११ बजे रथ रस्सों से खींचकर बिड़ला-भवन के बाहर निकाला गया। "महात्मा गांधी की जय!" "राष्ट्र-पिता की जय!" के नारों से आकाश गूंज उठा। सड़क के किनारे खड़ी जनता ने अपनी श्रद्धांजलियां भेंट करनी शुरू कीं और रथ धीरे-धीरे राजघाट की ओर बढ़ने लगा। "रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम!

ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान् !" कोटि-कोटि कण्ठों से रुद्ध स्वर में निकली हुई यह धुन धीरे-धीरे समस्त वायुमण्डल में व्याप्त होने लगी। शव-यात्रा को राजघाट तक पहुंचने में ६ घंटे लग गए।

३१ तारीख की संध्या को एक बार पांच फिर बजे। पर आज बापूजी अपनी दोनों प्यारी लड़कियों का सहारा लिये प्रार्थना-स्थल पर नहीं जा रहे थे। आज अनेक हाथ उनको अपने सिर और कंधों पर उठाये चन्दन की लकड़ियों पर रख रहे थे। चारों ओर से लाखों कंठों से जयध्वनि निकल रही थी और उसके साथ-साथ करुणक्रन्दन भी।

तख्ता चिता पर रख दिया गया। अपने बापू के चारों ओर खड़े होकर साथियों ने अंतिम प्रार्थना की और फूलों से भी कोमल उस प्यारे शरीर को लकड़ियों से ढक दिया। वह तेजस्वी रूप सदा के लिए आंखों से ओझल होगया।

रामदास भाई ने कपूर जला कर चिता सुलगाई। थोड़ी ही देर में चन्दन की लकड़ियों ने प्रचण्ड ज्वालाओं का रूप धारण कर लिया और उस दिव्य मूर्ति को, जो चालीस करोड़ के हृदय में विराजती थी, सदा के लिए अपने में समेट लिया।

बापूजी चले गए। क्या सचमुच वह अब नहीं हैं? नहीं, मुझे यह कहना जरा भी अच्छा नहीं लगता कि वह अब नहीं हैं। वह शरीरवान् थे, अब अशरीरी होगए; वह व्यक्त थे, अब अव्यक्त बन गए। वह मर कैसे सकते हैं? यह भी कैसे कहूं कि वह अब यहां मौजूद नहीं हैं? हिन्द का जर्रा-जर्रा उनकी याद से भरा पड़ा है। पहले वह हमसे जुदा हस्ती थे, अब हममें भी समा गए हैं। हमारे और उनके बीच का अन्तर मिट गया है। वह अबतक एक शरीर से हमारी सेवा और रखवाली करते थे, अब वह अनेक प्रकार से हमारी रखवाली कर रहे हैं। क्या ईश्वर के शरीर है? क्या उसको हमने कभी देखा है? मगर वह तो चौबीस घंटे बिना थके हमारी रखवाली कर रहा है। बापूजी की ज्योति उस एकात्मा से ही निकली थी, वह उसीमें विलीन हो गई। वह सदा हमें सही रास्ता दिखावेगी।

फिर भी न मालूम क्यों दिल को तसल्ली नहीं होती। आज अनाथ-सा बैठा-बैठा मैं यही सोच रहा हूं—"उनके साथ का मेरा यह ३० वर्ष का सम्पर्क स्वप्न था या वास्तविक ?" क्या कोई ज्ञानी इसका उत्तर देगा ?

: १८ :

विचारधारा और कार्यक्षेत्र

भारत की पुण्यभूमि समय-समय पर किसी-न-किसी महापुरुष को जन्म देती रही है। उनमें से प्रत्येक का जन्म किसी-न-किसी कार्य-विशेष की पूर्ति के लिए हुआ और वे भगवान् के विशेष अवतार माने गए। क्योंकि उनमें कितने ही अंशों में प्रभु की शक्ति विशेष विद्यमान थी। कोई दस कला लेकर आया, कोई बारह, कोई चौदह और कोई पूर्ण सोलह कलावाला कहलाया। राम का अवतार हुआ समाज में मर्यादा कायम करने के लिए। वह मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। कृष्ण भगवान् हुए 'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्',—साधुओं की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए। बुद्ध भगवान् हुए मानव-समाज को जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि रूपी दुःखों से छुड़ाने के लिए। क्या गांधीजी भी एक ऐसे ही अंशावतारी पुरुष थे ? क्या वह भी प्रभु की कलाएं लेकर अवतरित हुए थे ? क्या उनका जन्म भी साधुओं की रक्षा, दुष्टों के विनाश और धर्म की संस्थापना के लिए हुआ था ? क्या वह भी कोई नया पंथ कायम करना चाहते थे ?

गांधीजी ने कभी यह दावा नहीं किया कि वह कोई अवतारी पुरुष थे, बल्कि इस विचार का उन्होंने सदा कड़े शब्दों में विरोध ही किया। वह अपने को भारत-माता और मानव-समाज का एक तुच्छ सेवक गिनते थे और उनकी यह इच्छा थी कि मानव-समाज की सेवा करते-करते वह अपनी देह त्याग दें। उन्होंने कभी किसी नये पंथ को स्थापित करने की इच्छा नहीं की। वह तो गांधीवाद-जैसी कोई चीज है, यह भी नहीं मानते थे। वह किसी नये सत्य का प्रतिपादन करने नहीं आए थे। उनका प्रयत्न
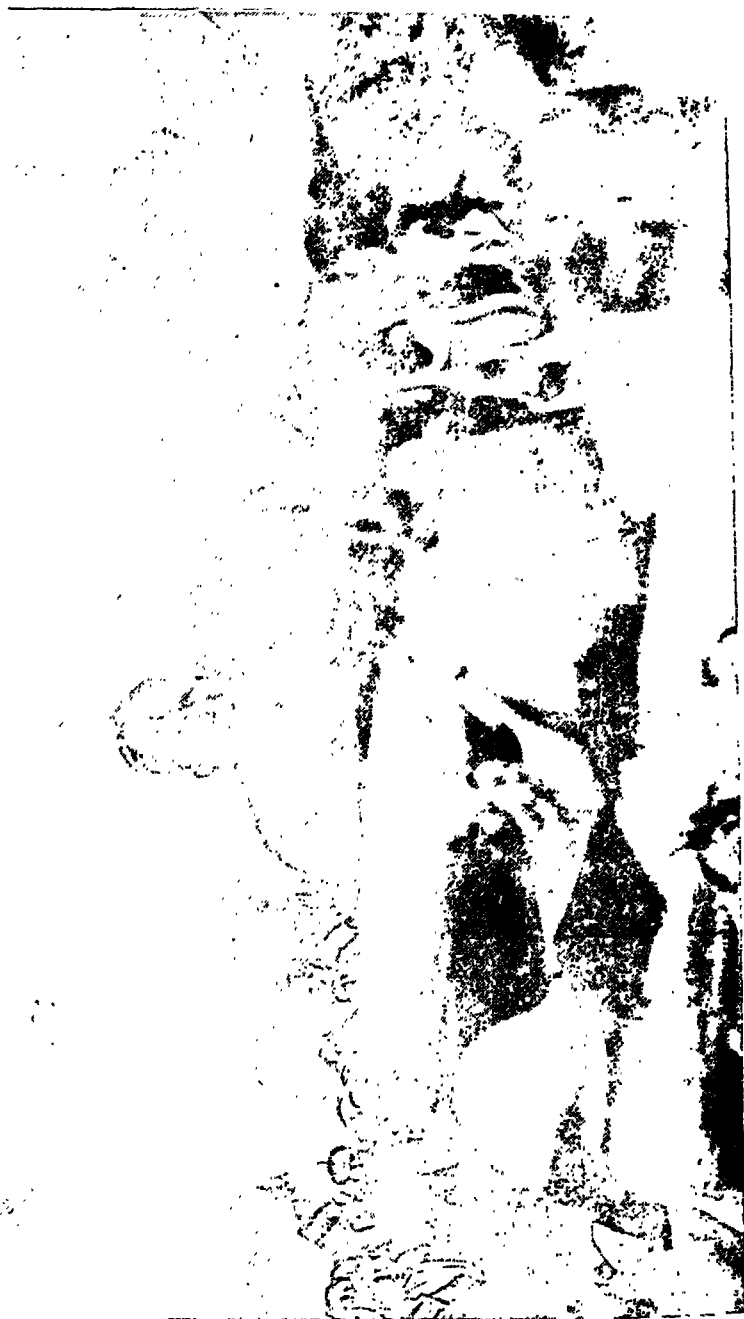
तो इतना ही था कि सत् को वह जैसा जानते या समझते थे ठीक उसी तरह वह उसका पालन करें और उसको सबके सामने रखें। हां, उनका इतना दावा जरूर था कि पुराने सत् पर वह नया प्रकाश डालना चाहते थे। वह सत् के शोधक और साधक थे।

वह कोई नये सिद्धान्त पेश नहीं कर रहे थे, बल्कि पुराने सिद्धान्तों को ही एक बार फिर से संसार के सामने रखना चाहते थे। उनका यह दावा ही नहीं था कि जो वह कहते थे वह ठीक ही था मगर वह जो कहते थे अपने सच्चे विश्वास और अन्तःप्रेरणा से कहते थे और इसमें उनका केवल एक हेतु था— अहिंसा की जटिल गुत्थियों का सुलझाना।

गांधीजी ने अपने को कभी कोई असाधारण अथवा अलौकिक पुरुष नहीं माना। वह अपनेको सर्वसाधारण में ही गिनते रहे और उनकी मान्यता थी कि अपने जीवन-काल में वह जो कुछ कर सके हैं उतना ही हर व्यक्ति करने की सामर्थ्य रखता है।

यदि वास्तव में वह साधारण मनुष्य थे तो क्या कारण था कि वह हर किसीके लिए इतने महान् और लोकप्रिय बन गए? उनमें ऐसी क्या बात थी कि उनकी मृत्यु से समस्त संसार में हाहाकार मच गया और पृथ्वी का कोई भाग ऐसा न रहा जहां उनके लिए शोक प्रकट न किया गया हो? उनमें ऐसी क्या शक्ति थी कि मित्र तो मित्र, उनको अपना शत्रु मानने वाले भी उनकी मृत्यु से दुःखित हुए बिना न रह सके? संसार में जितना शोक उनकी मृत्यु पर किया गया, आज तक और किसी व्यक्ति की मृत्यु पर नहीं किया गया। आखिर इसका क्या सबब था?

गांधीजी की महानता, उनकी लोकप्रियता, उनके जीवन की सफलता का रहस्य, उनकी सत्य और न्याय-निष्ठा में, उनकी सतत जागरूकता में, उनके विश्व-प्रेम अथवा 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना में और उनकी निर्भयता में निहित है। वह एक क्रान्तिकारी शोधक और सुधारक थे। वह प्रथम कोटि के सेवक व तपस्वी थे। सत्य को वह ईश्वर मानते थे तथा निर्भयता और प्रेम को सत्यरूपी परमेश्वर को प्राप्त करने के साधन।

बचपन से ही गांधीजी को सत्य परम प्रिय था। जब से उन्होंने हरिश्चन्द्र और प्रह्लाद की कथा पढ़ी थी तभी से उनमें सत्य की निष्ठा जाग्रत हो उठी थी और प्रह्लाद की जीवनी से तो वह इतने प्रभावित हुए थे कि उस बालक की दृढ़ता के आधार पर ही उन्होंने सत्याग्रह के प्रयोग का आविष्कार किया था। उनमें मिथ्याचार, मिथ्याभिमान और भ्रम तिलमात्र भी न थे। पारसमणि की तरह वह शुभ्र और पारदर्शी थे।

निर्भयता उन्होंने अपनी दाई से सीखी थी। बचपन में उन्हें बड़ा डर लगा करता था। उनकी दाई ने उन्हें बताया कि "राम का नाम लेने से सब भय दूर होजाता है।" तब ही से उन्होंने राम नाम लेना सीखा और वह दिनोंदिन निर्भय बनते गए।

उनका प्रेम परम पुनीत और समु की तरह विशाल था, जिसमें भला-बुरा सब कुछ समा जाता था। वह हर एक के इतने विश्वास-पात्र बन गए थे कि उनके सम्पर्क में जो भी आता, अपनी गुप्त-से-गुप्त बात उनके सामने प्रकट कर देता। किसीने कितनी ही बड़ी भूल की हो, कितना भी पाप किया हो, उनके सामने सब कुछ खुलकर कह डालता था और उनके प्रेम की छाया में अपने को सुरक्षित पाता था। वह पापी से नहीं, पाप से घृणा करते थे। पापी के लिए तो उनके हृदय में पूरी सहानुभूति थी और उसे सदा सुधारने का प्रयत्न करते थे।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, गांधीजी ने किसी नये धर्म का प्रचार नहीं किया, बल्कि हजारों और लाखों वर्ष से हिन्दू धर्म की जो पूंजी चली आई है, उसीको लेकर मनुष्य-समाज में उसका सौदा किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उस पूंजी को, जो दिनों-दिन घट रही थी, फिर से कई-गुना बढ़ा दिया। वह अपने को सनातनी कहते थे, मगर मौजूदा सनातन धर्म की संकीर्णता को छोड़कर उसकी विशालता को वास्तविक सनातन धर्म मानते थे। उनके सनातन धर्म में मनुष्य-मनुष्य में वैर को स्थान नहीं था, उसमें स्थान था प्रेम को। वह मानवता के अवतार थे। सनातन धर्म में आई छूआछूत को, ऊंच-नीच की भावना को वह समाज के लिए विष-रूप, काल-रूप मानते थे और कहते थे कि यदि हिंदू धर्म को जीवित रहना है

तो सवर्ण-अवर्ण का भेद मिटा देना होगा। वह वर्णाश्रम को मानते थे, मगर उसके मौजूदा रूप को नहीं। गुलामों की कोई जाति नहीं होती, यह उनका कहना था। मनुष्य-जाति ही उनके लिए एकमात्र वर्ण था। वह सर्वधर्म-समानता को मानने वाले थे और हर धर्म को अपने विश्वास के अनुसार सत् की मंजिल पर पहुंचाने के भिन्न-भिन्न मार्ग समझते थे। 'सत् एक है, विद्वान उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं,' वेद के इस वाक्य को उन्होंने चरितार्थ किया था।

गांधीजी इस संसार में पददलित और गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई परतंत्र जातियों का उद्धार करने और संसार को प्रिय लगनेवाली विनाशकारी हिंसा का प्रतिकार करने आए थे। वह मनुष्य को उसकी गिरी हुई दीन-हीन अवस्था से निकालकर और पशुता की कोटि से उठाकर सच्चे अर्थों में मानव बनाना चाहते थे। उनका हृदय इस बात को कबूल करने से इन्कार करता था कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अन्याय करे, अत्याचार करे और दूसरा उसे चुपचाप सहले। वह जितना दोषी अन्याय करने वाले को मानते थे, उससे कम दोषी उस मनुष्य को नहीं मानते थे जो अन्याय और अत्याचार सहता था।

उन्होंने वीरता पूर्वक सभी का मुकाबिला किया— कुटुंबियों का, जातिवालों का, समाज का, स्वधर्मियों और परधर्मियों का, देशियों और विदेशियों का, पूंजीपतियों और श्रमजीवियों का, राजा-महाराजाओं और किसानों का, राज-सत्ता और राज-सेवकों का। उनकी लड़ाई असत्य से थी, हिंसा और पशुबल से थी। जहां कहीं असत्य और अन्याय देखा, हिंसा और अत्याचार देखा, अनाचार और दुराचार देखा, वहां गांधीजी का विरोध देखा।

वह जन्मजात क्रांतिकारी थे। उनके जीवन का इतिहास क्रांति और विरोध से भरा पड़ा है। होश सम्हालते ही उन्होंने संसार को अन्याय से परिपूर्ण पाया। अतः मनुष्य-जाति को उबारने के लिए उन्होंने एक नये शस्त्र का आविष्कार किया जिसका नाम उन्होंने सत्याग्रह तथा अहिंसात्मक असहयोग रखा। उनके इस अमोघ शस्त्र ने संसार में एक नई क्रांति पैदा

कर दी और पशुबल पर खड़ी सत्ताओं की नींव को हिलाकर रख दिया।

भारतमाता ब्रिटिश सत्ता के नीचे डेढ़-दो सौ वर्षों से बुरी तरह कुचली जा रही थी। विदेशी हकूमत के चंगुल में फंसकर वह बेहाल थी। जो देश किसी समय अपनी सभ्यता और संस्कृति, अपने ज्ञान और अपनी समृद्धि, अपने कला-कौशल और अपनी शूरवीरता के लिए अद्वितीय था, उसके निवासी पश्चिमी शोषण की बदौलत अपना सब कुछ गंवा बैठे थे। उनकी स्वतन्त्रता छिन गई थी, वे रोटी को मोहताज हो गए थे, उनके पास तन ढकने को कपड़ा नहीं रह गया था, वे बेकार हो गए थे और उनके जीवन का मूल्य एक कुत्ते के जीवन से भी गिर गया था। नित्यप्रति नये-नये अपमान और अत्याचार सहना ही उनका क्रम बन गया था। वे इतने भीरु बन गए थे कि लाल पगड़ी को देख कर ही कांप उठते थे। उन्होंने अपना ज्ञान यहांतक खो दिया था कि निरक्षर भट्ट कहलाने लगे थे। संसार में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रह गई थी। उनका न कोई ईमान रह गया था और न धर्म। गुलामी ही उनका मजहब थी, वही उनका ईमान थी। ठीक इसी समय भारत के उस वीर पुरुष ने सिंहनाद किया और अपना पांचजन्य फूंकते हुए 'उत्तिष्ठत जाग्रत'—उठो, जागो का नारा लगाया। मृतप्राय भारतवासियों पर सत्याग्रह की संजीवनी बूटी का अमृत छिड़ककर उन्होंने उन्हें नया जीवन, नया बल प्रदान किया। उन्होंने संसार को बता दिया कि एक जाति दूसरी जाति पर बिना उसकी इच्छा के कदापि हकूमत नहीं कर सकती, भले ही वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो।

सत्याग्रह की उनकी यह देन रामबाण है जो कभी निष्फल नहीं जाती। सत्य और अहिंसा इस बाण के दो पक्ष हैं जिनके सहारे यह सर्व-विजयी बना है। इस शक्ति का सब काल और सब क्षेत्रों में प्रयोग हो सकता है, बशर्ते कि यह सत्य और अहिंसा उसकी आधारशिला हो। बापू के शब्दों में सत्याग्रही की हार कभी है ही नहीं।

उन्होंने हमें बताया कि जहां अन्याय और अत्याचार देखो, असत्य और हिंसा देखो, शोषण और अमानुषिकता देखो, वहीं उसका विरोध

करो। मगर मुकाबला किस हथियार से हो ? साध्य को प्राप्त करने के लिए साधन क्या हो ? क्या हम उन्हीं साधनों को बरत सकते हैं जिनको मिटाना हमारा हेतु है, अर्थात् क्या हम अपने साधनों में झूठ और फरेब को, धोखा और दगा को स्थान दे सकते हैं ? क्या हम विरोधी का मुकाबिला लाठी, तलवार, बंदूक, बम इत्यादि से, जो हिंसा के वाहन हैं, कर सकते हैं ? क्या इन हिंसक साधनों से विश्व-शांति स्थापित हो सकती है ? बापू ने कहा— नहीं, इन साधनों को काम में लेने से तुम जिस मकसद को हासिल करना चाहते हो उसतक कभी न पहुंच सकोगे। यदि संसार से तुम्हें अन्याय और अत्याचार मिटाना है तो तुम्हें उन कारणों को दूर करना होगा, जिनके परिणामस्वरूप ये पैदा होते हैं। अबतक चली आई शैली को बिलकुल बदल देना होगा। जबतक साधन शुद्ध न होंगे, साध्य भी शुद्ध नहीं रह सकेगा। यदि संसार में शांति और संतोष पैदा करना है तो उसके लिए साधन भी उसी कोटि के बरतने होंगे। जो अधिकार तुम अपने लिए प्राप्त करना चाहते हो, वही तुम्हें दूसरों को भी देने होंगे। तुम्हें मनुष्य की मनोवृत्ति को बदलना होगा। उसमें से द्वेष और बदला लेने की भावना को निकालना होगा। उसमें से हिंसावृत्ति को छुड़ाना होगा। स्वयं सब कष्ट सहन करके विरोधी के हृदय का परिवर्तन करना होगा। वह कबतक तुम्हारे साथ अन्याय करता जायगा, कबतक तुम्हारे ऊपर अत्याचार ढाता रहेगा ? एक दिन उसको सोचना ही पड़ेगा कि वह क्या कर रहा है। लोकमत तुम्हारे साथ होगा और अत्याचारी को अपना मार्ग बदलना ही पड़ेगा।

हिंसा का मार्ग भय पर निर्भर है, अहिंसा का निर्भयता पर। हिंसा में विश्वास रखनेवाला अपने शरीर की रक्षा के लिए तरह-तरह के रास्तों का प्रयोग करके अपने शत्रु को दूर रखने का प्रयत्न करता है, मगर उसके मन में यह डर बराबर विद्यमान रहता है कि उसका शत्रु किसी भी वक्त अवसर पाकर उसका खात्मा कर सकता है। उसको केवल इतना ही आत्मसंतोष रहता है कि वह मरने से पहले कइयों को मारने की शक्ति रखता है और इसीको शूरवीरता नाम दिया गया है।

अहिंसा पर विश्वास रखनेवाला न किसीसे भयभीत होता है, न किसीके हृदय में भय पैदा करता है। वह मरने का इल्म सीखता है, मारने का नहीं। वह विरोधी पर हाथ नहीं उठाता, उसपर क्रोध नहीं करता, मन से भी उसका अनिष्ट नहीं चाहता, प्रेम और दया से उसका हृदय बदलना चाहता है। यही तो भगवान् बुद्ध ने बताया था। 'अक्रोधेन जयेत क्रोधं, असाधुं साधुना जयेत,' अर्थात् क्रोध को शांति से जीतो, दुष्ट को सद्व्यवहार से जीतो। ऐसा व्यक्ति मन, कर्म और वाणी के समान व्यवहार करता है। वह मन में कपट नहीं रखता, कोई काम छिप कर नहीं करता। अपनी जान की बाजी लगाकर बिना किसी संकोच के आगे बढ़ा चला जाता है। मृत्यु को वह अपना चिरसाथी मानता है। ऐसा अहिंसक ही वास्तव में शूरवीर होता है।

बापू मनुष्य-स्वभाव में से वैर और अहिंसा को निकालकर उसकी जगह प्रेम और अहिंसा रखना चाहते थे। वह दुष्टों का संहार करने नहीं आए थे, बल्कि मनुष्यमात्र के स्वभाव में से दुष्टता मिटाना चाहते थे। वह मनुष्य-स्वभाव के पूर्ण पारखी थे और उनका विश्वास था कि हर व्यक्ति उन्नति कर सकता है, यदि उसें अनकूल और समान अवसर दिये जायं। वह किसीको अपना शत्रु नहीं गिनते थे। वैरभाव उनमें था ही नहीं। विरोधी को भी वह प्रेम से जीत लेने का दावा करते थे और यदि सफलता न मिले तो साधन का दोष न मानकर अपनी साधना की अपूर्णता को ही दोष देते थे।

सत्य और अहिंसा को साधन बना कर बापूजी एक ऐसे निर्भय समाज का निर्माण कर रहे थे, जिसमें न धर्म-भेद हो, न जाति-भेद और न वर्ण-भेद, जिसमें न कोई ऊंच हो न नीच अमीर हो न गरीब और शासक हो न शासित। वह समाज स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की सेवा के लिए, यज्ञ-भावना को लक्ष्य में रख कर बने; जिस समाज में शोषक न हो, विद्वेष न हो, अज्ञान न हो, अन्याय न हो—न कोई अन्याय करे, न अन्याय सहे; जिस समाज में स्त्री-पुरुष के समान अधिकार हों और प्रगति करने के लिए हर एक को समान अवसर हों। अधिकार

मांगने से नहीं वल्कि कर्त्तव्यपालन द्वारा स्वतः प्राप्त हों। कोई व्यक्ति खाली हाथ न वैठ सके; सवको काम मिले और परिश्रम के उचित दाम मिलें। हरएक के लिए खाने को अन्न, पहनने को वस्त्र और रहने को घर मिले। जिस समाज में कायदे-कानून का वन्धन कम-से-कम हो, धन को कोई महत्व न दिया जाय, वल्कि एक दूसरे के परिश्रम से प्राप्त की हुई आवश्यक वस्तुएं वदलने के तरीके (वस्तु-विनिमय) में झूठ, धोखा और चोरी न हो, रिश्वत और काला वाजार न हो और कंट्रोल लगने की जरूरत ही न पड़े।

यह थी उनकी अहिंसक समाज की कल्पना, जिसे उन्होंने स्वराज्य और रामराज्य कहकर पुकारा। इसे सर्वोदय समाज का नाम भी दिया गया है।

भय और कायरता जैसे शब्द वापूजी के कोष में थे ही नहीं। उनका कहना था कि यद्यपि अशस्त्रधारी अहिंसक शस्त्रधारी हिंसक से वढ़कर शूरवीर है, तथापि कायर वनने की अपेक्षा हिंसक शस्त्रधारी वनना अच्छा है। भयभीत होकर आदमी झुक जाता है, अपनी स्वतन्त्रता खो देता है; निर्भय रह कर वह स्वतंत्रता कायम रखता है, असहयोग और वहिष्कार द्वारा विरोध करने की सामर्थ्य रखता है। इसीपर से उनका असहयोग और वहिष्कार का सिद्धांत निकला। यह कहना अनुचित न होगा कि यदि हमने वापूजी के उपदेश को भलीभांति समझकर उसका पालन किया होता तो आज हमारे देश की पवित्र भूमि भाई-भाई के रक्त से न रंगी गई होती। यह हमारे अंदर की छिपी हिंसा का ही परिणाम है जिसने उस आदमी को पैदा किया जिसके हाथ उस महामानव की हत्या करते समय कांपे तक नहीं। भारत के पूर्ण चंद्र में यह एक काला धव्वा है जो किसी काल में भी धुल न सकेगा।

भारतभूमि धर्मभूमि कहलाती रही है। यहां सन्तों और महात्माओं की सदा प्रतिष्ठा हुई है। इसलिए हमें यह विचारना ही होगा कि आखिर क्या कारण है जो ऐसे महात्मा को भी उन्हींके धर्म का एक अनुयायी कत्ल कर दे और हिन्दू-समाज उसे सहन कर ले? हमें इस वात पर गौर करना ही

होगा कि क्या कारण है जो भारत की पवित्र भूमि पर बसनेवालों के हाथ अबलाओं पर, नन्हें-नन्हें बच्चों पर, बूढ़ों और बीमारों पर, जख्मियों पर, निस्संकोच भाव से उठ गए और उनका खून करने से न हिचकिचाये ?

भारत कोई नया देश नहीं है, उसका इतिहास कोई सौ-दो सौ, हजार-दो हजार वर्ष पुराना नहीं है। वह तो प्राचीनतम देश है और ऐसी ही उसकी सभ्यता और संस्कृति है। संसार के इतिहास में देशों का निर्माण हुआ, जातियां बनीं और उठीं, सभ्यताएं फैलीं, मगर आज उनका केवल इतिहासमात्र ही शेष है; आज की दुनिया में उनका न कहीं नाम है, न निशान।

हम, जो अपने को प्राचीनतम भारतीय सभ्यता के पुजारी मानते हैं, उसपर गौरव करते हैं और उसका बखान करते कभी थकते नहीं, हमें विचारना होगा कि क्या वास्तव में हम उस भारतीय सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं ? क्या भारतीय इतिहास के किसी भी काल में ऐसी बर्बरता दिखाई दी थी जैसी कि हमने अभी कुछ दिन हुए देखी ? इस देश में बड़े-बड़े युद्ध लड़े जा चुके हैं, कितनी ही सल्तनतें बदली हैं, बाहरी देशों के कितने ही आक्रमण भी हुए हैं, परन्तु किसी काल में भी हमारा नैतिक पतन इतना भयंकर नहीं हुआ था जितना कि अब कथित स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् हुआ है। हम आज स्वतंत्र कहलाते हैं, किंतु यदि हमें स्वतंत्रता प्यारी है और हम स्वतंत्र रहना चाहते हैं तो हमें अपने ही गिरेबान में मुंह डाल कर देखना होगा कि हम कहां जा रहे हैं और सावधान होकर इस नैतिक पतन से बचना होगा।

बापूजी अपने नित्य के प्रवचनों में हमारा ध्यान इसी नैतिक पतन की ओर खींचते रहते थे और हमें सावधान करते थे। उन्होंने बताया कि दुष्ट की कोई जाति नहीं होती, उसका कोई धर्म नहीं होता। वह हर समाज और हर धर्म में विद्यमान है। वह हिंदुओं में भी है और मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों और बौद्धों में भी है। आज हमारा समाज दुष्टता को, अनीति को सहन ही नहीं कर रहा है, बल्कि उसे प्रोत्साहन भी दे रहा है। समाज का वह एक अंग बन गई है। इसीलिए

समाज जिन अनाचारों और दुराचारों को कभी सहन नहीं कर सकता था, उन्हींको करनेवाले दुराचारियों और अनाचारियों को वह आश्रय दे रहा है और उन्हें धर्म-रक्षकों के नाम से पुकारता है ! समाज यदि इस मार्ग पर चलता रहा और उसका इसी प्रकार से नैतिक पतन होता रहा तो उसका विनाश अवश्यंभावी है। बापूजी यादवकुल का प्रमाण देते हुए बताया करते थे कि वह जाति अपने वैभव और समृद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुंच चुकी थी, मगर उसका नैतिक पतन यहांतक हुआ कि वह धर्मगुरुओं का भी उपहास करने लगी थी और हर प्रकार की दुष्टताओं पर उतर आई थी। परिणामस्वरूप कृष्ण भगवान् के अक्षत रहते ही उस जाति का विनाश हो गया और वे उसको बचा न सके। भारतवासियों ने यदि इस चेतावनी के रहस्य को समझा होता और थोड़े धैर्य से काम लिया होता तो वे देखते कि पापी तो अपने पाप के बोझ से खुद-ब-खुद मरनेवाले थे, उन्हें कौन बचा सकता था ! मगर हमने प्रकृति के हाथ को रोक दिया और पापी को बचा लिया। इतना ही नहीं, बल्कि बापूजी की चेतावनी की अवहेलना करके हिन्दू समाज ने उनके रक्त से अपने हाथ रँगे हैं। यहूदी जाति अपने महान् पुरुष को फांसी के तख्ते पर लटका कर आजतक घर-घर, देश-देश भटकती फिर रही है। उसको कहीं आश्रय नहीं मिलता। डर इसी बात का है कि यदि हिन्दू समाज ने इस महान् पाप का प्रायश्चित्त समय रहते न किया और समाज इसी प्रकार की अनीति, अनाचार तथा हिंसा सहन करता रहा तो हमारा भी कहीं यहूदियों का-सा ही हाल न हो जाय।

बापूजी अहिंसक समाज के अनुयायियों के लिए ग्यारह व्रतों के पालन का आदेश किया करते थे, मानों लक्ष्य पर पहुंचने के लिए ये ग्यारह सीढ़ियां उन्होंने बताई थीं। वे ग्यारह व्रत इस प्रकार थे—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह ।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना ।
ही एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रत निश्चये ॥

(विनोबा भावे कृत)

अर्थात्, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, निर्भयता, सब धर्मों की समानता, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण, इन व्रतों का सेवन नम्रतापूर्वक निश्चय के साथ करना चाहिए।

अहिंसा, सत्य और निर्भयता के गुण उसी व्यक्ति में आ सकते हैं जिसमें चरित्रबल हो। इसीलिए बापूजी ने ब्रह्मचर्यव्रत-पालन को इतना अधिक महत्व दिया था और बताया था कि स्त्री और पुरुष का संबंध निर्विकार हो सकता है, वह भाई और बहन का संबंध बन सकता है।

चरित्रबल बनाने के लिए ही उन्होंने अस्वाद-व्रत की ओर ध्यान दिया और कहा कि भोजन क्षुधा-निवारण के लिए है, रस-तृप्ति के लिए नहीं।

संसार से शोषण की प्रवृत्ति मिटाने के लिए बापूजी ने अपरिग्रह-व्रत पर जोर दिया, क्योंकि वर्तमान शोषण के पीछे हमारी बढ़ती हुई आवश्यकताएं और सुख-भोग की इच्छाएं हैं। ये बढ़ी हुई आवश्यकताएं ही संसार के बड़े-बड़े युद्धों की जननी हैं। आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ असमानता बढ़ती है। उसे दूर करने के लिए ही बापूजी ने नितान्त आवश्यक वस्तु के अलावा संग्रह करने को चोरी माना है। प्रकृति में सबके लिए सब सामग्री पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है, परन्तु मानव-समाज में एक के पास अधिक और दूसरे के पास कम सामग्री है। इसी ने आवश्यकता पैदा की और मनुष्य को चोरी करने पर मजबूर किया। यही कारण था कि बापूजी ने अस्तेय और अपरिग्रह अर्थात् चोरी न करने और आवश्यकता से अधिक न रखने पर जोर दिया।

मनुष्य जबतक शारीरिक श्रम न करे, वह न ब्रह्मचारी रह सकता है, न अस्वादी बन सकता है और न अपरिग्रही। वह चोरी करने से भी नहीं बच सकता, क्योंकि समाज में जो केवल स्वार्थ के लिए, अपने लिए, रहता है वह चोर है। वेद में कहा है—"केवलाघो भवति केवलादी।" वह केवल पाप खाता है, जो अकेला खाता है। गीता में भी कहा है— "जो सेवा किये बिना इसे भोगेगा वह चोर है, जो अपने लिए ही पकाते हैं वे पाप खाते हैं।"

इसीलिए बापूजी ने शारीरिक श्रम पर बहुत जोर दिया। श्रमजीवी को ही सच्ची भूख लगती है। वह जो खाता है, स्वाद से खाता है, उसे बनावटी स्वाद की जरूरत नहीं रहती। वह श्रम से थककर सोता है, निर्विकार निद्रा लेता है। उसका शरीर बलिष्ठ होता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य और संयम-पालन सहज होता है। वह स्वयं पैदा करता है, अपनी मेहनत की रोटी खाता है, उसे आत्मविश्वास है, वह स्वाश्रयी है; इसलिए उसे संग्रह करने की जरूरत नहीं रहती। चोरी वह करेगा क्यों? वह तो सदा संतोषी है।

अहिंसक समाज में सब धर्मों के प्रति समभाव रहता है, क्योंकि उस समाज का सदस्य समान अधिकार में विश्वास करने वाला होता है। वह सब धर्मों को एक ही मंजिल पर पहुंचने के भिन्न-भिन्न मार्ग मानता है। हरएक को अपने मार्ग से जाने का पूरा अधिकार है। उसे भूल करने का भी पूरा अधिकार है। यदि सत्य और अहिंसा पर कायम रहकर वह निर्भयतापूर्वक कार्य कर रहा है तो वह अपनी भूल स्वयं ही सुधार लेगा और अपनी मंजिल पर पहुंच जायगा।

अहिंसक समाज में यद्यपि किसीके प्रति द्वेष नहीं होगा, मगर अपने स्वदेशी-धर्म का वह पूरा पालन करेगा। स्वदेशी-धर्म की ओर से वह उदास न रहेगा। स्वदेशी-धर्म-पालन में दूसरे देशों के प्रति घृणा नहीं है, बल्कि अपने देश को शोषण और लूट-खसोट से बचाकर अपने देश-वासियों की रक्षा करना है और इसमें दूसरे देशों का ध्यान अपने देश के प्रति खींचना है। यह धर्म नहीं है कि अपना घर जलता रहे, जनता भूख से मरती रहे, लोग बेकार बैठे रहें और हम दूसरे देशों का माल खरीदकर उनके पास पैसा भेजते रहें। स्वदेशी-व्रत-पालन मनुष्य को स्वाश्रयी बनाता है।

समाज की विषमता को दूर करने के लिए ही बापूजी ने अस्पृश्यता-निवारण का आंदोलन उठाया। उनके पहले कितने ही सन्त और महात्मा हुए, मगर हरिजनों के अधिकारों के लिए जितना प्रयत्न उन्होंने किया उतना और किसीने नहीं किया। उनके अहिंसक समाज में ऊंच-नीच का

भेदभाव रह ही कैसे सकता था ? हरिजनों को घूरे पर से उठाकर सिंहासन पर उन्होंने ही बैठाया। उनकी प्रार्थना थी कि यदि उन्हें फिर से जन्म लेना ही पड़े तो वह भारतखण्ड में हो और किसी ढेड़ जातिवाले के घर में हो। अपना पेशा भी वह भंगी, चमार या बुनकर का मानते थे। उन्होंने बार-बार कहा था कि यदि मेरी चले तो मैं किसी हरिजन-कन्या को स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति बनाऊं।

भारतीय समाज के सबसे अधिक भुलाए हुए अंग---नारी जाति को बापूजी ने ही पुनः उच्चतम प्रतिष्ठा प्रदान करवाई, इसमें लेशमात्र की शंका नहीं। जहां उन्होंने घूरे पर से उठा कर हरिजनों को सिंहासन पर बैठाया वहां भारतीय नारी को भी समानता के दर्जे पर उन्होंने ही पहुंचाया। उनसे पहले तो वह अबला कहलाती थीं और परदे के पीछे पड़ी दुःखी जीवन व्यतीत करती थीं। गांधीजी ने कहा--- "ये अबलाएं नहीं सबलाएं हैं, माताएं हैं। इन्हें माता का स्थान मिलना चाहिए।" उन्होंने समाज से बहिष्कृत नारियों को भी ऊपर उठाया और उन्हें फिर से समाज में दाखिल होने का अधिकार दिया। दूसरे देशों में स्त्रियों ने अपने हकों के लिए बड़े-बड़े आंदोलन उठाए, गांधीजी के प्रताप से यहां बिना आंदोलन किये ही समान अधिकार प्राप्त हो गए।

और वैश्य ? कृषि, गोपालन तथा वाणिज्य-व्यापार, ये तीन धर्म गीता के अनुसार वैश्य के बताये गए हैं। गांधीजी के आने से पहले किसी को यह पूरा पता भी नहीं था कि देहातों की संख्या कितनी है और उनमें बसने वालों की हालत क्या है। पढ़े-लिखे लोग शहरों से ही परिचित थे और उन्हीं की समृद्धि से संतुष्ट थे। मगर गांधीजी ने बताया कि असली भारत तो अपने सात लाख देहातों में बसता है, इन देहातों को भुलाकर तुमने कंगाल कर दिया। इसीलिए तुम गुलाम हुए हो। गांधीजी ने पददलित और निरक्षर किसानों को भारत की वास्तविक संपत्ति माना और उनके पंचायती राज्य को ही राम-राज्य कहा। उन्होंने शहरियों से कहा कि वे तुम्हारे अन्नदाता हैं, तुम उनकी कद्र करो। वे सदा तुम्हारी ओर देखते आए हैं, अब तुम्हें उनकी ओर देखना होगा।

देहातों की ओर ध्यान आकर्षित करने के साथ ही बापूजी ने गोसेवा के सच्चे धर्म को भी समझाया। उन्होंने बताया कि वर्तमान गोरक्षक गऊ के सेवक नहीं घातक हैं। जब तक स्वस्थ और स्वच्छ खूब दूध देने वाली गायें न होंगी, सन्तानें भी बलिष्ठ न होंगी। भारत कृषि-प्रधान देश है, उसकी ८० फीसदी आबादी देहात में रहकर कृषि पर ही जीवन-निर्वाह करती है। गोसन्तान ही उनका असल धन है। उसके बूते खेती की जा सकती है; इसलिए गोसेवा से ही वे जिन्दा रह सकते हैं।

शहर में बसने वाले धनिकों और व्यापारियों से उन्होंने कहा कि अपनी मेहनत से पैदा की हुई शुद्ध कौड़ी की कमाई खाओगे तब ही तुम उन्नति कर सकोगे। शोषण करोगे तो तुम्हारा नाश हुए बिना न रहेगा। ऐसी ही भावना से प्रेरित होकर बापूजी ने ट्रस्टीशिप की भावना को प्रमुखता दी थी। वह कहा करते थे कि धनिकजन अपने को संपत्ति का स्वामी न समझें बल्कि उसका स्वतःनियुक्त संरक्षक गिनें और उसमें से अपनी उचित आवश्यकता के निमित्त खर्च करके बाकी समाज-हित में लगावें। ऐसा न करके यदि धन का दुरुपयोग करेंगे तो राज्य को पूरा अधिकार है कि उनको बिना कुछ मुआवजा दिये उस संपत्ति को उनसे छीन ले।

: १६ :

रचनात्मक कार्यक्रम

रचनात्मक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए और देश में सच्चे कार्यकर्ता फैलाने के उद्देश्य से बापूजी ने पांच संस्थाओं का निर्माण किया और कार्यक्रम के १८ विभाग कर दिये।

उन्होंने जो पांच संघ कायम किये उनकी कार्यशैली का थोड़ा-सा आभास नीचे दिया जाता है:—

१. चरखा संघ—इस संघ द्वारा बापूजी ने भारत को अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाया। चरखे की सहायता से उन्होंने भारत के लाखों भूखे नर-नारियों को उदर भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा दिया।

इसी के द्वारा उन्होंने भारत को विदेशी सत्ता की लूट से बचाया और जनता की असली जरूरत की ओर देशभर का ध्यान आकर्षित किया। चरखे को वह अपने रचनात्मक कार्यक्रम के सूर्यमण्डल में सूर्य का स्थान देते थे तथा अन्य कार्यों को ग्रहों का, जो सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। उन्होंने बताया कि जिस प्रकार भारत के किसान अपने पेट के लिए अनाज पैदा करके स्वाश्रयी बने हुए हैं, उसी तरह वे अपने खेतों में पैदा की हुई कपास को अपने खाली समय में कातकर कपड़ा तैयार कर सकते हैं और विदेश जाने वाले करोड़ों रुपये को बचा सकते हैं। इन्सान की दो ही बड़ी आवश्यकताएं हैं---रोटी और कपड़ा। जब ये उसे स्वतः प्राप्त होगये, तब उसे दूसरों के मुंह की ओर ताकना न पड़ेगा, वह स्वावलम्बी और स्वाश्रयी बन जायगा। अपने पैरों पर खड़ा रहकर वह गुलामी से छूट सकेगा।

खादी के संबंध में एक बार उन्होंने लिखा था: "यह एक विवादग्रस्त विषय है। बहुतेरे मानते हैं कि खादी की हिमायत करने में मैं बहाव के खिलाफ नाव खे रहा हूं और मेरे हाथों स्वराज्य की किश्ती डूबनेवाली है और मैं देश को पुराने अंधकार-युग की ओर घसीट ले जा रहा हूं। मगर खादी मुल्क की सारी जनता की आर्थिक आजादी और समानता के आरम्भ की सूचक है। खादी का अर्थ है सर्वव्यापी स्वदेशी भावना, जीवन की सब आवश्यक वस्तुएं हिंदुस्तान से ही---और वे भी गांव वालों की मेहनत और बुद्धि के उपयोग द्वारा---प्राप्त करने का निश्चय।

"मेरे विचार से खादी भारतीय मानवता की एकता की, उसकी आर्थिक स्वतंत्रता और समानता की प्रतीक है। खादी मानस का मतलब यह है कि जिन्दगी की जरूरतों की पैदाइश और बंटवारे का काम कुछ हाथों में न रहकर अनेक छोटे-छोटे गांवों में बांट दिया जाय। इससे अब तक हम इस सूत्र पर पहुंचे हैं कि हरएक गांव अपनी सारी जरूरतें पैदा करे और काम में लाये।

"खादी की पैदाइश में कपास पैदा करना, चुनना, ओटना, साफ करना, धुनना, पूनी बनाना, कातना, सूत में मांडी देना, रंगना, ताना-बाना करना, बुनना और कपड़े का धोना, ये सब काम शामिल हैं।

"इस मुख्य ग्रामोद्योग और उसके सहचारी हाथ-उद्योगों का जब से निर्दयतापूर्वक विनाश कर डाला गया, तब से गांवों से बुद्धि और तेज गायब हो गये हैं।"

बापूजी ने अपनी सर्वप्रथम पुस्तक 'हिंद-स्वराज' में' जो १९०८में लिखी गई थी, इस चरखे का वर्णन किया है और उसको अहिंसक-समाज की बुनियादी ईंट बताया है। उसी वक्त से उन्होंने मशीन-युग का विरोध करना शुरू किया था। लोगों ने उनकी बात को हँसी में टाल दिया था, मगर उसी मशीन-युग ने संसार में पचीस वर्ष के अन्दर-अन्दर दो प्रलयंकारी युद्ध उपस्थित किये और अब तीसरे के लिए तैयारियां हो रही हैं। पर इस चरखे के सूत ने भारत को स्वतन्त्र करवाने में बहुत काम किया और समाज को संहार से बचाया।

२. *ग्राम-उद्योग-संघ*—इस संघ को स्थापित करके बापूजी ने देहात में बसने वाले सैकड़ों-हजारों दस्तकारों को धंधे से लगा दिया और अनक मृतप्राय अथवा अर्द्धमृत धंधों को जीवित कर दिया। इस संघ द्वारा उन्होंने शहर और देहात के अंतर को दूर करने का प्रयत्न किया और शह-रियों का ध्यान सात लाख देहातों में बसने वाले देशवासियों की ओर आकर्षित किया। इन उद्योगों के संबंध में उन्होंने एक बार लिखा था—
"देहातों में बनी वस्तुओं को काम में लाना सबको अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। हम जब गांवों की ओर मुंह करेंगे और गांवों का जीवन और वहां की चीजें हमें रुचने लगेंगी तब हम पश्चिम की नकली या मशीनों से बनी चीजों से घर नहीं भरेंगे बल्कि जिसमें दरिद्रता अथवा भुखमरी और बेकारी का नामनिशान न होगा ऐसे नवीन भारतवर्ष की सच्ची राष्ट्रीय अभिरुचि हममें आयेगी।"

इन देहाती दस्तकारियों के आधार पर गांधीजी ने विकेंद्रीकरण की भावना को बढ़ावा दिया था और हमें बताया था कि किस प्रकार हरएक देहात स्वाश्रयी बन सकता है और यदि एक गांव अपनी आवश्यकता की सब वस्तुएं अपने यहां ही पैदा कर लेता है तो किस प्रकार वह सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र हो जाता है। बापूजी का कहना था कि अपनी आवश्यकता

से अधिक जो बने वही दूसरों के पास जाय। वह तो यहां तक मानते थे कि अपनी आवश्यकता से अधिक बनाने की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि अधिक माल को बेचने के लिए बाजार ढूंढना होगा जिसका अर्थ है शोषण।

बापूजी अहिंसक समाज को कल-कारखानों पर जिन्दा रखना नहीं चाहते थे। पिछले युद्ध ने इस बात को भलीभांति सिद्ध कर दिया है कि कल-कारखानों का ध्वंस करके शत्रु शीघ्र ही देशभर को पराजित कर सकता है। जहां बिजली और पानी पर शत्रु ने काबू किया कि देश पंगु बना। गांधीजी हर गांव और कस्बे को इतना स्वतन्त्र बना देना चाहते थे कि यदि एक छोटे भाग को हानि पहुंच भी जाय तो उसका प्रभाव देश के दूसरे हिस्से पर न पड़े। वह हर भाग में, हर क्षेत्र में विकेंद्रीकरण को लागू करना चाहते थे, ताकि एक हिस्से का प्रभाव दूसरे पर पड़ ही न सके। वह चाहते थे कि सब स्वाश्रयी, स्वावलम्बी तथा स्वतन्त्र बने रहें।

देहात-सफाई—बापूजी को देहातों की सफाई की बड़ी चिंता थी। वह कहा करते थे कि हमारे गांव सब प्रकार की स्वच्छता के नमूने होने चाहिएं। हर कार्यकर्त्ता को उनका यही आदेश था कि वह झाड़ू-टोकरी ले और देहात में जा बसे, देहातियों के सुख-दुःख का साथी बने, उनके रास्तों और जोहड़ों की सफाई करे, चुपचाप चरखा चलाये, गांव वालों को चरखा चलाना तथा दूसरे हुनर सिखाये। भोले-भाले देहाती स्वयं खिंचते चले आवेंगे। उनमें जाकर कोई व्याख्यान देना और वहां से वापस चले आना ऐसा ही है जैसे जूते पर लगी गर्द को झाड़कर साफ कर देना।

आरोग्य और स्वास्थ्य-विज्ञान—इस संबंध में गांधीजी कहते थे: "स्वास्थ्य-रक्षा की कला और उसका विज्ञान एक अध्ययन का अलग विषय है। सुव्यवस्थित समाज में नागरिक आरोग्य और शोध के नियम जानते और पालते हैं। नीरोग शरीर में नीरोग मन रह सकता है। यदि हमारा मन भी नीरोग हो तो हम हिंसामात्र का त्याग करेंगे और आरोग्य के नियमों का स्वाभाविक रूप से पालन करते रहेंगे जिससे हमारे शरीर अनायास नीरोग बनेंगे। इसके लिए कुछ नियम हैं:—

(१) शुद्ध से शुद्ध विचार रखो और निकम्मे तथा गंदे विचारों

को मन से निकाल बाहर करो।

(२) दिन-रात खूब ताजी हवा लो।

(३) शारीरिक और मानसिक श्रम का पलड़ा बराबर रखो।

(४) सीधे तन कर खड़े हो, सीधे तनकर बैठो, अपने हर काम में शुद्ध और स्वच्छ रहो और तुम्हारे काम तुम्हारी आंतरिक स्थिति के बाह्य प्रतिबिंब हों।

(५) मानव-बन्धुओं के सेवार्थ जीने के लिए खाओ, तरह-तरह के मजे हासिल करने के लिए मत खाओ। इसके लिए तुम्हारा आहार इतना होना चाहिए कि तुम्हारे मन और शरीर को तरोताजा रख सके। मनुष्य जैसा आहार करता है वैसा ही बन जाता है।

(६) तुम्हारा पानी, आहार और हवा स्वच्छ होने चाहिएं और तुम सिर्फ निजी स्वच्छता से ही संतोष मत कर लो, बल्कि जो विविध स्वच्छता तुम अपने लिए चाहते हो उसकी धूल अपने वातावरण को भी लगा दो।

गांधीजी सदा प्राकृतिक चिकित्सा पर ही जोर देते थे। इस संबंध के अपने अनुभव उन्होंने 'आरोग्य-दिग्दर्शन' और 'आरोग्य की कुंजी' नाम की पुस्तक में बताये हैं। गरीबों और देहातियों के लिए वह प्राकृतिक चिकित्सालय खुलवाने के पक्ष में थे। पूना के पास उर्ली कांचन में तो एक ऐसा चिकित्सालय स्थापित भी हो गया था जहां वह स्वयं इलाज किया करते थे।

३. तालीमी संघ—यह संघ उन्होंने सच्ची शिक्षा प्रदान करने के लिए कायम किया। उनका कहना था कि 'सा विद्या या विमुक्तये', अर्थात विद्या वह है जो मुक्ति के लिए हो। अभी तक भारत में गुलाम बनाने की शिक्षा मिलती थी जो ब्रिटिश साम्राज्यशाही को कायम रखने के लिए दी जाती थी। शराब से जो कर आता था उसको हमारी शिक्षा के लिए खर्च किया जाता था।

गांधीजी ने अपनी नई शिक्षा का नाम बुनियादी तालीम रखा। इस तालीम का उद्देश्य 'गांव के बच्चों को गढ़-गढ़कर आदर्श ग्रामवासी बनाना है। नई तालीम शहरों के और गांवों के बालकों का भारतवर्ष

में जो कुछ उत्तम और चिरस्थायी है उसके साथ संबंध जोड़ देती है। वह शरीर और मन दोनों का विकास साधती है और बालक को देश की भूमि के साथ संबद्ध रखती है। उसके मन में भविष्य का भव्य चित्र खड़ा करती है और उस भविष्य की स्थापना में वह बालक या बालिका अपने अध्ययन-काल से ही अपना हिस्सा देने लगता है।' इस तालीम के जरिये बालक को सिखाया जाता है कि वह किस प्रकार हाथ से मेहनत करते-करते ज्ञान पैदा कर सकता है। वह विद्या-प्राप्ति के साथ-साथ उत्पादन-शक्ति भी प्राप्त कर लेता है और उसके ज्ञान का विकास भी होता रहता है।

प्रौढ़-शिक्षण—यद्यपि अंग्रेज भारत में डेढ़ सौ वर्ष से अधिक रहे तथापि हमारी शिक्षा की हालत यह रही कि कुछ फीसदी को छोड़कर बाकी को लिखना-पढ़ना तो क्या अपने दस्तखत करने भी नहीं आते। इसलिए गांधीजी ने बच्चों के शिक्षण के साथ ही प्रौढ़-शिक्षण पर भी जोर दिया। उन्होंने लिखा—"मेरे हाथ में यदि प्रौढ़-शिक्षा का काम हो तो मैं प्रौढ़ विद्यार्थियों के सामने अपने देश की महत्ता और विशालता की तसवीर खड़ी करने से शुरूआत करूं। ग्रामवासी का भारतवर्ष उसके गांव में समाया हुआ रहता है। वह दूसरे गांव में जाता है तो अपने गांव को 'घर' कह कर बात करता है। भारतवर्ष उसके लिए एक भौगोलिक नाम है। गांव में कैसा घोर अज्ञान फैला हुआ है, इसका हमें जरा भी ध्यान नहीं है।"

सब से पहले उन्हें मौखिक शिक्षण द्वारा राजनीति के विषय में सही ज्ञान दिया जाय और उसके साथ-साथ अक्षर-ज्ञान भी दिया जाय।

राष्ट्रभाषा—गांधीजी ने भाषाओं के मसले पर भी काफी रोशनी डाली। उन्होंने लिखा—"अपनी मातृभाषा की अपेक्षा हम अंग्रेजी भाषा के प्रति जो अधिक प्रेम रखने लगे हैं, उसकी वजह से सुशिक्षित और राजनैतिक मनोवृत्ति वाले वर्गों और जनसमूह के बीच गहरी खाई पड़ गई है। हिन्दुस्तान की भाषाएं इससे दरिद्र बन गई हैं।

"सारे भारत के आपसी व्यवहार के लिए हमें हिन्दुस्तान के भाषा-समूह में से एक ऐसी भाषा चाहिए जिसे हमारी जनता की बड़ी-से-बड़ी तादाद आज भी जानती और समझती हो और उसे आसानी से सीखा जा

सके। यह भाषा निर्विवाद रूप से हिन्दी है। उत्तर भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों इसे बोलते और समझते हैं। वह जब फारसी लिपि में लिखी जाती है तो उर्दू कहलाती है और देवनागरी अक्षरों में लिखी जाने पर हिन्दी कहलाती है।" उनका विचार था कि हर भारतवासी को दोनों लिपियां सीखना चाहिए।

स्वभाषा-प्रेम—राष्ट्रभाषा के साथ वह अपने-अपने प्रांत की भाषा सीखने और उसको तरक्की देने के लिए जोर देते थे।

४. हरिजन-सेवक-संघ—इस संघ के निर्माण द्वारा बापूजी ने कट्टर सनातनी हिन्दुओं को चेतावनी दी कि छूआछूत तथा ऊंच-नीच की भावना हिन्दू समाज की जड़ों को खोखला कर रही हैं। यदि हरिजनों के साथ किए अन्याय का प्रतिकार न किया गया तो हिन्दू-धर्म का नाश हो जायगा। उनका कहना था कि हरिजनों की सेवा करके सवर्ण उन पर कोई उपकार नहीं करेंगे, बल्कि उन पर किये गये अन्याय का यह प्रायश्चित्त होगा।

वह अपने हस्ताक्षर करने के पांच रुपये लेते थे और जहां जाते हाथ पसार कर हरिजनों के लिए पाई-पाई, पैसा-पैसा जमा करते थे। यह सब रुपया हरिजन-सेवक-संघ के लिए व्यय होता था। इस प्रकार उन्होंने लाखों रुपया जमा करके हरिजनों की सेवा के लिए दिये।

५. गो-सेवा संघ—भारतवर्ष में गोधन की हीन अवस्था देख कर बापूजी ने गो-सेवा संघ का निर्माण किया। इस संघ द्वारा उन्होंने बताया कि दुधार गायें कैसे मिल सकती हैं, कृषि के लिए पुष्ट और सुन्दर बैल कैसे मिल सकते हैं और अच्छी खेती कैसे हो सकती है। फल, सब्जी और और अनाज की पैदावार कैसे बढ़ सकती है। फूंका के अमानुषी व्यवहार को देखकर ही उन्होंने गाय और भैंस का दूध पीना छोड़ दिया था। जूते भी वह मुरदार चमड़े की ही पहनते थे।

उक्त बातों के अतिरिक्त बापूजी के रचनात्मक कार्यक्रम के कुछ अंग और हैं जो नीचे दिये जाते हैं और जिनसे उनकी कार्यशैली का पता चलता है—

१. कौमी एकता—हिन्दुस्तान की उन्नति के लिए कौमी एकता की आवश्यकता जितनी गांधीजी ने समझी उतनी और किसी नेता ने न समझी होगी। गांधीजी इस एकता को केवल राजनैतिक कारणों से ही महत्त्व नहीं देते थे। वह तो जबरदस्ती भी लादी जा सकती है। इस एकता का मतलब वह करते थे — 'तोड़े न टूटने वाली हार्दिक एकता जो हर मजहब और हर मिल्लत के पैरोकारों में देशहित और समाज-हित के लिए कायम की जाय'।

२. आर्थिक समानता—इस सम्बन्ध में बापूजी का कहना था—"आर्थिक समानता का अर्थ है पूंजीदार और मजदूर के बीच का सनातन विरोध खतम कर देना। इसका मतलब यह है कि एक तरफ जिनके हाथ में राष्ट्र की संपत्ति का बड़ा हिस्सा इकट्ठा हो गया है वे नीचे उतरें और दूसरी तरफ जो आधा पेट खाकर जीने वाले अधनंगे करोड़ों जन हैं वे ऊंचे चढ़ें। धनिकों और भूखों के बीच का महासागर जब तक कायम है तब तक अहिंसक राज्यतंत्र की स्थापना की आशा आकाश-कुसुम की आशा-जैसी है। नई दिल्ली के महलों और गरीब वर्ग के छप्परों के बीच की विषमता स्वतन्त्र भारतवर्ष में एक दिन भी नहीं चल सकती; उसमें तो गरीब लोग देश के धनी-से-धनी आदमियों के जितना ही सत्ता भोगेंगे। धन का और धन से मिलने वाली सत्ता का स्वेच्छा से त्याग करके उसमें समूचे देश के हित के लिए दूसरों को हिस्सेदार नहीं बनाया गया तो एक दिन हिंसा और खून-खच्चर की गति निश्चित है। मेरे ट्रस्टीपन के सिद्धांत का बड़ा मजाक उड़ाया गया है, फिर भी मैं उस सिद्धांत से चिपका हुआ हूं। यह ठीक है कि उस स्थिति को पहुंचना कठिन है, इसी तरह अहिंसा की सिद्धि भी मुश्किल ही है। प्रश्न यह है कि समाज में आज जो विषमता मौजूद है वह हिंसा से या अहिंसा से कैसे दूर की जा सकती है? मैं समझता हूं कि हिंसा के मार्ग से हम परिचित हैं। उसे कहीं कामयाबी नहीं हुई है। कितनों का दावा है कि रूस में यह बहुत हद तक कामयाब हुई है। मुझे इस बारे में शंका है।"

३. किसान—किसानों को गांधीजी देश की असली संपत्ति

मानते थे, देश में जिनकी संख्या नव्वे प्रतिशत है और जो सात लाख देहातों में बसते हैं। दक्षिण अफ्रीका से वापस आकर इस देश में सबसे पहला सार्वजनिक कार्य उन्होंने चम्पारन के किसानों में ही किया था। कांग्रेस वालों ने जिस तरीके से किसानों में काम किया, उसे गांधीजी अहिंसक मार्ग नहीं मानते थे। उससे हानि पहुंचती है, ऐसा उनका मत था। किसानों के संगठन के लिए वह चम्पारन, खेड़ा, बारडोली और बोरसद में किये गये आन्दोलनों की मिसाल देते थे और किसानों को दलबंदी का हथियार न बना कर सच्चे अर्थ में उनकी सेवा करने का आग्रह करते थे।

४. मजदूर—गांधीजी ने कारखानेदारों और मजदूरों के बीच की खाई को पाटने के लिए और उनमें होने वाले नित्यप्रति के वर्ग-कलह को मिटाने के लिए एक नया ही अहिंसक मार्ग निर्धारित किया था, वह यह कि कारखानेदार और मजदूर अपने झगड़ों को पंचों के सामने रखा करें और उनके किये फैसले पर दृढ़ रहें। हड़ताल को वह आखिरी साधन मानते थे। उनकी राय थी कि अगर कारखानेदार और मजदूर समझौते के असूल पर दृढ़ रहें तो हड़ताल के अवसर कम-से-कम होंगे। चम्पारन में किसानों के संगठन की मिसाल कायम कर के उन्होंने अहमदाबाद में कपड़े के मिलों के मजदूरों का संगठन किया था और सारे देश के सामने एक नमूना पेश किया था। उनकी रचना शुद्ध और सरल अहिंसा की बुनियाद पर हुई थी। आज तक अहमदाबाद यूनियन (मजूर महाजन) की बराबरी कोई अन्य संघ न कर सका।

५. विद्यार्थी—इनके साथ गांधीजी का गाढ़ा सम्पर्क था। गांधीजी ने अपने अनुभव से सिद्ध कर दिया था कि जो शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती रही है उसने उन्हें गुलाम रखने में सबसे बड़ा हिस्सा लिया है। इसीलिए उन्होंने नई शिक्षा-पद्धति की योजना हमारे सामने रखी थी। विद्यार्थियों के लिए उनकी ये हिदायतें थीं—

(१) दलबन्दी की राजनीति में शरीक नहीं होना चाहिए। (२) राजनैतिक हड़तालों में भाग न लो। (३) नियमपूर्वक और शास्त्रीय ढंग से कताई करो। (४) सदा खादी पहनो और विदेशी या देशी मिलों

में बनी वस्तुओं का त्याग कर दो। देहात की बनी चीजों को काम में लाओ। (५) सांप्रदायिकता या छूआछूत की भावनाओं में से एक को भी अपने हृदय में न घुसने दो। (६) पड़ौसी की मुसीबत में उसकी सहायता करो। देहात में भंगी का काम और रास्ते की सफाई करो। (७) राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी दोनों लिपियों में सीखो (८) जो कुछ नया सीखो आसपास के गांवों में घूमकर वहां के लोगों को पढ़कर सुना दो। (९) कोई काम गुप्त रूप से न करो। जो करो खुले आम करो। शुद्ध, संयमी जीवन बिताओ; सब प्रकार के भय का त्याग करो। अपने से कमजोर सहपाठियों का रक्षण करने को सदा तैयार रहो और जान को खतरे में डालकर भी अहिंसक आचरण द्वारा दंगे शांत करने को तैयार रहो (१०) साथ पढ़ने वाली विद्यार्थिनियों के साथ सरल और सभ्यतापूर्ण व्यवहार करो।

६. स्त्रियां—बापूजी ने बताया कि स्त्री को पुरुष की सच्ची सहचरी बनना चाहिए। जो रूढ़ियां और कानून पुरुषों ने गढ़े थे और जिनके गढ़ने में स्त्रियों का हाथ बिल्कुल नहीं था उन रूढ़ियों और कानूनों की चक्की के नीचे स्त्रियां कुचल दी गई हैं। अहिंसा के आधार पर रची हुई जीवन-योजना में भविष्य-निर्माण का जितना अधिकार पुरुष को है उतना ही स्त्री को भी है। पर अहिंसक समाज का तो यह कायदा है कि पहले हम कर्त्तव्य का पालन कर चुकें तभी हमें हक मिलता है। अतः इससे यह नतीजा निकलता है कि सामाजिक आचार के नियम एक-दूसरे के साथ हिलमिलकर और सलाह-मशविरा करने के बाद ही गढ़े जाने चाहिएं। वे लादे नहीं जा सकते। पुरुषों ने स्त्रियों के प्रति अपने बर्ताव में इस सत्य को पूरी तरह नहीं समझा है। वे स्त्रियों के साथी और मित्र हैं, यह मानने की बजाय उन्होंने अपने आपको उनका स्वामी मान रखा है। स्त्रियों को गुड़िया और भोग का साधन नहीं मानना चाहिए, बल्कि समाज की सेवा में सम्मिलित सहचरी समझना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा—"स्त्रियों को दुष्टों से डरना नहीं चाहिए। स्त्री की इच्छा बिना उसके सतीत्व को कोई नष्ट करने वाला नहीं है। वे तो मरना जानती हैं और ईश्वर क्या है यह वे समझती हैं। तब दुष्ट तो उनको नमस्कार ही करेगा।"

७. आदिवासी व जरायमपेशा जातियां—गांधीजी के अहिंसक समाज में इन पिछड़ी हुई जातियों को भी उचित स्थान है। एक बार बापूजी ने लिखा था—"हमारा देश इतना विशाल और उसमें बसनेवाली जातियां इतनी विविध हैं कि हममें सबसे बड़ा जानकार भी सारी कोशिश के बावजूद उन सबके विषय में पूरी तरह जानकारी हासिल नहीं कर सकता। ये आदिवासी जातियां गुलामी की दशा में पहुंच गई हैं । इनसे बेगारमें काम लिया जा सकता है। ये लोग नितान्त अज्ञानी हैं। इनकी उन्नति करना राष्ट्रसेवा का अविभाज्य अंग है। इन्हें सुधारकर राज्य का अंग बनाना हमारा कर्त्तव्य है।"

८. शराबबंदी—सामाजिक और नैतिक सुधार के लिए शराब तथा अन्य मादक वस्तुओं का त्याग बहुत जरूरी है। कांग्रेस सन् १९२० से ही शराबबन्दी पर जोर दे रही है। सत्याग्रह-आंदोलन में शराब की दुकानों पर पिकेटिंग करते हुए असंख्य स्वयंसेवकों और स्वयंसेविकाओं को जेल जाना पड़ा था। गांधीजी ने इस संबंध में लिखा था—"अगर हम अहिंसा की कोशिश से अपने मकसद पर पहुंचना चाहते हैं तो जो लाखों औरत-मर्द शराब, अफीम आदि नशीली चीजों की आदत के शिकार बन रहे हैं उनकी किस्मत हमें भविष्य की सरकार पर नहीं छोड़नी चाहिए।" गांधीजी का मतलब यह था कि कार्यकर्ताओं को अविलम्ब समाज में से इस बुराई को दूर करने में लग जाना चाहिए।

९. कोढ़ियों की सेवा—भारत में कोढ़ की बीमारी बड़े पैमाने पर पाई जाती है। जहां दूसरे देशों में मिशनरी लोग समाज के इस अंग की बड़े प्रेम से सेवा करते हैं, भारत में हम अपने समाज के इस अंग को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। गांधीजी ने इन्हें भी अपनाया। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में और हिंदुस्तान में कोढ़ियों की स्वयं सेवा की और अपने रचनात्मक कार्य में कोढ़ियों की सेवा को भी शामिल किया।

इस प्रकार रचनात्मक कार्यक्रम बतलाकर गांधीजी लिखते हैं—"कार्यकर्ताओं को पक्के तौर पर समझ लेना चाहिए कि रचनात्मक कार्यक्रम पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का अहिंसक और सत्यमय मार्ग है। इस

कार्यक्रम की कार्य में पूर्ण प्रगति ही पूर्ण स्वराज्य है। रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य राष्ट्र का निर्माण बिल्कुल नींव से, जड़ से करना है।

"रचनात्मक कार्यक्रम को दूसरे शब्दों में कहें तो सत्य और अहिंसक साधनों से पूर्ण स्वराज्य की रचना का काम करना ज्यादा ठीक होगा। हिंसक साधनों द्वारा, जो निश्चय ही असत्य का मार्ग है, पूर्ण स्वराज्य की रचना का अत्यन्त दुःखद अनुभव हम कर चुके हैं। आजकल के युद्ध में प्रतिदिन होने वाले धन, जन और सत्य के संहार पर जरा गौर तो कीजिये।

"तात्त्विक दृष्टि से सत्य और अहिंसा द्वारा प्राप्त पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है राष्ट्र के प्रत्येक अंग की स्वतंत्रता जिसमें जाति, रंग (काला-गोरा) और धर्मों का भेद किये बिना जनता के हर फिरके—गरीब-से-गरीब फिरके को भी पूर्ण स्वराज्य हो। ऐसे स्वराज्य की बुनियाद स्वार्थ या एकाधिकार नहीं हो सकती। इसलिए परस्पर सहकार और परस्परावलंबन के तत्त्वों के साथ उसका पूरा-पूरा मेल है।

"अहिंसा का रास्ता कई बातों में आसान है जरूर, पर दूसरी अनेक बातों में बहुत कठिन भी है। वह एक-एक भारतवासी के जीवन को छूकर उसे सचेत बनाती है। जो ताकत उसके भीतर सोई छिपी पड़ी है, उस ताकत को जगाकर उसमें नया तेज ला देती है और भारतीय मानवता रूपी सागर के एक-एक जलकण के साथ स्वयं एकरूप हो वह गौरव उसके मन में उपजाती है। अहिंसा ऐसी बेजान चीज नहीं है जैसा कि इतने दिनों से हम गलती से मानते आए हैं। यह तो मनुष्य-जाति ने आज तक जितनी ताकतें देखीं और जानी हैं उन सबसे अधिक प्रभाव रखती है और इसी के ऊपर मनुष्य की हस्ती तक का आधार है।"

गांधीजी का कहना था कि लड़ाई लड़ने के लिए जितनी जरूरत सिपाहियों की पड़ती है, उससे अधिक जरूरत युद्ध-सामग्री जुटाने की पड़ती है। युद्ध-सामग्री बिना सिपाही बेकार है और सिपाही भी तो यूं ही नहीं बन जाते; उन्हें भी तो फौजी तालीम की जरूरत पड़ती है। इसलिए जिस प्रकार हिंसक समाज में फौज और उसके लिए अपरिमित युद्ध-सामग्री की जरूरत है, उसी प्रकार अहिंसक समाज को भी सत्याग्रहियों

और पूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम की जरूरत है। विना रचनात्मक कार्यक्रम को अपनाये हम अपने ध्येय को पहुंच न सकेंगे और यदि पहुंच भी गए तो उसे कायम न रख सकेंगे। और इसीलिए वह स्वयं अंतिम घड़ी तक रचनात्मक कार्यक्रम में लगे रहे और उसपर चलने के लिए निरंतर जोर देते रहे।

गांधीजी ने भारतीय इतिहास का बड़ी बारीकी के साथ अध्ययन किया था और उन्होंने इस देश में अंग्रेजों की सफलता के रहस्य को पहचाना था। वह जानते थे कि भारत में एक बार नहीं अनेक बार राज-परिवर्तन हो चुके थे मगर इस देश की इतनी दुर्गति कभी नहीं हुई थी जितनी ब्रिटिश हकूमत के समय हुई। इसका कारण यह था कि भारत के देहातों का जो पंचायती राज्य था उसे ब्रिटिश हकूमत से पहले कोई दूसरी राजसत्ता उखाड़ न सकी थी। हम हर प्रकार से स्वाश्रयी और स्वावलम्बी रहते चले आये थे। ब्रिटिश हकूमत ने हमारे उस पंचायती राज्य को नष्ट कर डाला और गांवों को हर प्रकार से शहरों का गुलाम बना दिया। गांधीजी अपने रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा उसी पंचायती राज्य को कायम करके हकूमत को ऊपर से नहीं बल्कि नीचे से चलवाना चाहते थे और स्वराज्य की नींव इतनी गहरी डालना चाहते थे कि इस हिंसामय संसार की कोई भी शक्ति भारत की स्वतन्त्रता को छीन न सके।

: २० :

सत्य और परमेश्वर

प्रार्थना में बापूजी का अटल विश्वास था। वह उनके जीवन का अविभाज्य अंग थी। नियत समय में जरा-सी देरी उन्हें बेचैन कर देती थी। वह कहा करते थे--'बिना भोजन के मैं हफ्तों जी सकता हूं, हवा लिये बिना भी कुछ क्षण टिक सकता हूं; मगर राम के बिना, प्रार्थना के बिना, क्षण-भर भी नहीं रह सकता।' बापूजी का राम सर्वव्यापी था। वह जड़ में भी था और चेतन में भी। उनके हर काम में राम मौजूद था। राम के लिए

ही उनका सब काम था। वह उनके श्वासोच्छ्वास में बसा हुआ था। उनका राम उनके कंठ के नीचे उतर कर उनके हृदय में जा बैठा था। वह प्रार्थना के समय सबको अंतर्मुख बनने को कहते और अर्थसहित उसका मनन करने पर जोर देते। वह बार-बार कहते कि राम तुम्हारे कंठ के नीचे उतरना चाहिए, वह हृदय में जाकर बैठ जाना चाहिए। वह इस दोहे को प्रायः पढ़वाया करते—

'माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख माँहि,
मनवा तो चहुंदिशि फिरे, यह तो सुमिरन नाँहि।'

उनकी प्रार्थना सामूहिक होती थी। वह अपने लिए नहीं, जन-कल्याण के लिए प्रार्थना करते थे। वह स्वयं तो राम में रमे हुए थे, उन्हें प्रार्थना की क्या दरकार थी?

जैसा कि सबको विदित है, सत्य और अहिंसा के बापूजी परम पुजारी थे। वह सत्य और अहिंसा में कोई अन्तर नहीं मानते थे; यदि अन्तर मानते भी थे तो इतना ही कि अहिंसा को वह साधन मानते थे और सत्य को साध्य। उनका कहना था कि "यदि हम साधन का पूरी तरह ध्यान रखेंगे तो जल्दी या देर से साध्य को भी हम कभी-न-कभी प्राप्त कर ही लेंगे। लेकिन जबतक हम इस नाशवान् शरीर में कैद हैं, तबतक पूर्ण सत्य को प्राप्त करना हमारे लिए असम्भव है। परम सत्य का तो केवल चिन्तन ही किया जा सकता है; इस शरीर द्वारा उस सत्य के जो शाश्वत् है, दर्शन नहीं किये जा सकते।"

ईश्वर के साक्षात्कार के सम्बंध में बापूजी ने ५ मार्च '२५ के 'नवजीवन' में लिखा था—"यह अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसको हम सब महसूस करते हैं, लेकिन जानते नहीं। मेरा ईश्वर तो मेरा सत्य और प्रेम है। नीति और सदाचार ईश्वर है, निर्भयता ईश्वर है, ईश्वर प्रकाश और जीवन का मूल है, फिर भी वह इन सबसे ऊपर और परे भी है। ईश्वर अन्तरात्मा है तो वह नास्तिकों की नास्तिकता भी है, क्योंकि वह अपने अमर्यादित प्रेम से उन्हें भी जिन्दा रहने देता है। वह हृदय को देखनेवाला है, वह बुद्धि और वाणी से परे है, हम स्वयं जितना अपने को जानते हैं

उससे कहीं अधिक वह हमें और हमारे दिलों को जानता है। जैसा हम कहते हैं वैसा ही वह हमें नहीं समझता। क्योंकि वह जानता है कि जो हम जबान से कहते हैं अक्सर वही हमारा भाव नहीं होता। ईश्वर उन लोगों के लिए एक व्यक्ति ही है जो उसे व्यक्तिरूप में हाजिर देखना चाहते हैं। जो उसका स्पर्श करना चाहते हैं उनके लिए वह शरीर धारण करता है। वह पवित्र-से-पवित्र तत्त्व है। जिन्हें उसमें श्रद्धा है उन्हींके लिए उसका अस्तित्व है। सब लोगों के लिए वह सभी चीज है। वह हममें व्याप्त है और फिर भी हमसे परे है। उसके नाम पर भयंकर अनीति युक्त काम किये गए हैं और अमानुषिक अत्याचार भी हुए हैं, लेकिन इससे उसका अस्तित्व नहीं मिट सकता। वह बड़ा सहनशील और धैर्यवान है, लेकिन वह बड़ा भयंकर भी है। उसका व्यक्तित्व इस दुनिया में सबसे अधिक काम करने वाली ताकत है। जैसा हम अपने पड़ोसी मनुष्य और पशु दोनों के साथ बर्ताव करते रहते हैं, वैसा ही बर्ताव वह हमारे साथ करता है। उसके सामने अज्ञान की दलील नहीं चल सकती। लेकिन यह सब होने पर भी वह बड़ा रहमदिल है, क्योंकि वह हमें पश्चात्ताप करने का मौका देता है। दुनिया में सबसे बड़ा प्रजातंत्रवादी वही है; क्योंकि वह भले - बुरे को पसन्द करने के लिए हमें स्वतंत्र छोड़ देता है। वह सबसे बड़ा जालिम है, क्योंकि वह अक्सर हमारे मुंह तक आये कौर को छीन लेता है और इच्छा स्वातंत्र्य की ओर हमें इतनी कम छूट देता है कि हमारी मजबूरी के कारण उससे सिर्फ उसीको आनंद मिलता है। हिन्दू-धर्म के अनुसार यह सब उसकी लीला है, उसकी माया है। हम कुछ नहीं हैं, सिर्फ वही है। और अगर हम हों तो हमें सदा उसके गुणों का गान करना चाहिए और उसकी इच्छा के अनुसार चलना चाहिए। आइए, उसकी बंसी के नाद पर हम नाचें, सब अच्छा ही होगा। . . .

"यह पूछा गया है कि आप ईश्वर को सत्य क्यों मानते हैं? अपने बचपन में मुझे ईश्वर के हजार नाम लेने सिखाये गए थे, लेकिन उसके नाम हजार तक ही सीमित नहीं हैं, उसके तो उतने ही नाम हैं जितने पृथ्वी पर प्राणी हैं और इसलिए हम उसे बिना नाम का भी कहते हैं और

चूंकि उसके अनन्तरूप हैं इसलिए हम उसे अरूप भी कहते हैं और चूंकि वह अनेक जिह्वा द्वारा बोलता है इसलिए वह वाणी के भी परे है। ईश्वर को जो प्रेम कहकर पुकारते हैं उनके साथ मैं उसे प्रेम भी कहूंगा, लेकिन अपने-आप से तो मैं यही कहता हूं कि ईश्वर भले ईश्वर है मगर सबसे बढ़कर ईश्वर सत् है। मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहता हूं कि सत् ही ईश्वर है। इन दोनों बयानों में जो बारीक भेद है उसे आप देख सकते हैं। मैं इस अन्तिम परिणाम पर सत् के लिए अपनी पचास वर्ष की निरंतर साधना के पश्चात् पहुंचा हूं। मैंने महसूस किया कि अगर कोई सत् के निकट पहुंचना चाहता है तो वह प्रेम द्वारा ही पहुंच सकता है। लेकिन मैंने यह भी पाया कि प्रेम के अनेक अर्थ लिये जाते हैं और मनुष्य-प्रेम यदि वासना का स्वरूप ले ले तो वह गिरावट की बुनियाद बन जाय। मैंने देखा है कि प्रेम को अहिंसा का स्वरूप देनेवाले इस संसार में बहुत कम हैं, लेकिन सत् के कभी दो अर्थ नहीं किये गए, यहांतक कि नास्तिक भी सत् की आवश्यकता तथा शक्ति से इन्कार नहीं कर सकते, बल्कि सत् की खोज की लगन में नास्तिक यहांतक बढ़ गए कि उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व से ही इन्कार कर दिया। अपने दृष्टिकोण से उनका यह निर्णय सही था . . . और इसी दलील के आधार पर, बजाय इसके कि मैं यह कहता कि ईश्वर सत् है मैंने यह कहना पसन्द किया कि सत् ईश्वर है।

"अब प्रश्न उठता है कि सत् किसे कहें ? प्रश्न कठिन है, लेकिन अपने लिए तो मैंने इसका हल यह कहकर निकाल लिया है कि तुम्हारी अन्तप्रेरणा जो कहे वही सत् है। आप पूछेंगे कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न और एक-दूसरे के विरुद्ध सचाइयों का विचार कैसे करते हैं? इस बात को देखते हुए कि मनुष्य की बुद्धि अनंत साधनों द्वारा काम करती है और मनुष्य की बुद्धि का विकास हरएक के लिए एकसा नहीं है, यह कहा जा सकता है कि जो एक के लिए सत् है वही दूसरे के लिए असत् हो सकता है और इसलिए जिन्होंने प्रयोग किये हैं वे इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि उन उद्योगों को करने के लिए कुछ शर्तें ध्यान में रखनी चाहिएं।

जिस तरह विज्ञान के प्रयोगों के लिए बाकायदा लाजमी हिदायतों का एक पाठ्यक्रम बना हुआ है उसी तरह अध्यात्म के प्रयोग करने के लिए साधक को कठिन प्रारम्भिक नियंत्रणों का पालन करना पड़ता है। इसलिए इससे पूर्व कि कोई अंतप्रेरणा की बात कहे उसे अपनी मर्यादाओं का विचार कर लेना चाहिए। इसीलिए अपने अनुभवों के आधार पर हमारा यह विश्वास है कि व्यक्तिगत रूप से जो सत् की परमात्मा के रूप में खोज करना चाहता है उसे कुछ व्रतों का पालन करना आवश्यक है—जैसे कि सत्य बोलने और ब्रह्मचर्य-पालन करने का व्रत, (सत् और ईश्वर के प्रेम को किसी दूसरे पदार्थ के साथ बांट नहीं सकते) अहिंसा का व्रत, गरीबी और अपरिग्रह का व्रत। जबतक आप इन पांच व्रतों के करने का निश्चय न कर लोगे, अपने प्रयोग में उतर ही न सकोगे। कुछ शर्तें और भी बताई गई हैं, लेकिन मैं किसीको उन सबमें जाने के लिए नहीं कहता। इतना कहना ही काफी है कि जिन्होंने ये प्रयोग किये हैं वे जानते हैं कि हरएक के लिए यह दावा करना उचित नहीं है कि वह अंतःकरण की आवाज को सुन सकता है। और चूंकि मौजूदा काल में हम हर किसीको बिना साधना-अवस्था में से गुजरे हुए ही यह दावा करते देखते हैं कि वह अन्तःकरण की आवाज सुनने में समर्थ है, इसीलिए इस व्यथित संसार को इतना असत्य दिया जा रहा है। मैं जो कुछ सच्ची नम्रता के साथ बता सकता हूं वह यह है कि सत् किसी ऐसे व्यक्ति को प्राप्त नहीं हो सकता जिसमें नम्रता की भावना न हो। अगर आप सत्य के समुद्र के सीने पर तैरना चाहते हो तो अपने को शून्य बना लो।

"लोग कहते हैं कि मैंने अपने विचार बदल लिये हैं, मैं आज उससे बिल्कुल भिन्न बात करता हूं जो मैंने बर्षों पहले कही थी। वास्तविकता यह है कि हालतें बदल गई हैं। मैं तो वही हूं, मेरे शब्द और काम मौजूदा हालात के अनुसार होते हैं। मेरे वातावरण में शनैः-शनैः विकास होता रहा है और एक सत्याग्रही के नाते मेरी प्रतिक्रियाएं उसीके अनुसार होती रही हैं।

"जब मैं लिखने बैठता हूं तो इस बात का ध्यान नहीं रखता कि

मैंने पहले क्या कहा था। मेरा उद्देश्य यह नहीं रहता कि मैंने किसी खास प्रश्न पर जो कहा हो उसके साथ संगति रहे, बल्कि में तो संगति उस सत् के साथ रखता हूं जो अमुक क्षण में मेरे सामने उपस्थित हो जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं सत् से सत् पर पहुंचा। मैंने अपनी स्मृति को निरर्थक बोझ से बचाया है और इससे भी बढ़ कर बात यह है कि जब कभी मुझे अपने आज के और पचास वर्ष पूर्व के लेख का मुकाबला करना पड़ा है तो मैंने दोनों में कोई असंगति नहीं पाई है। जो मित्र मेरे कथन में असंगति पाते हैं उनके लिए यह बेहतर होगा यदि वे मेरे लेखों का वही अर्थ निकालें जो मेरा अंतिम लेख उनको सुझाए, जबतक कि वे पुराने अर्थ को ही पसंद न करते हों। मगर अपनी पसंद करने से पूर्व वे इस-बात को भी जानने की कोशिश करें कि क्या सचमुच दोनों लेखों में संगति ही तो नहीं है जो उन्हें असंगति प्रतीत हो रही है।"

ये थे गांधीजी के सत् के विषय में विचार जिनपर उनकी अटूट श्रद्धा थी।

: २१ :

विशेषताएं

जैसा कि हम देख चुके हैं, गांधीजी का कार्य-क्षेत्र केवल राजनीति तक ही सीमित न था। उन्होंने जीवन तथा समाज के हर क्षेत्र में प्रवेश किया था और जिस क्षेत्र में उन्होंने प्रवेश किया उसमें क्रान्ति पैदा कर दी।

उनके अंदर विद्युत जैसी चकमक शक्ति भरी हुई थी, जो विरोधियों को भी अपनी ओर खींच लेती थी। एक बार जो उनके परिचय में आता, उनके प्रेमपाश में सदा के लिए बंध जाता। जो भी उनके सम्पर्क में आता यही समझने लगता कि जितना प्रेम वह उससे करते हैं उतना दूसरे से नहीं करते।

उनकी वाणी कोमल, उनकी बुद्धि विशाल, उनका ज्ञान अपरिमित और उनका अनुभव अद्वितीय था। एक बड़े आश्चर्य की बात यह है कि

सर्व मानसिक शक्तियों का विकास उनके जीवन के अन्तिम दिन तक बढ़ता ही गया है। विकट-से-विकट समस्या को सुलझा देना उनके बाएं हाथ का खेल था। कठिनाइयों का मुकाबला करने में उनको आनंद सा आता था। 'अशक्य' 'असम्भव' शब्द उन्होंने अपने कोष में से मिटा ही दिया था। वह पूर्ण निर्भय थे। उनकी दृष्टि इतनी तीव्र थी कि भविष्य के गर्भ में क्या भरा है वह उन्हें वर्तमान की तरह दीख जाता था। बड़े-बड़े धुरंधर विद्वानों और अनुभवियों की बुद्धि जहां कुंठित हो जाती थी वहां सहज भाव से वह अपने सुझाव रख देते थे। विकट-से-विकट परिस्थिति में भी वह घबराते नहीं थे।

जीवन उनके लिए एक खेल था। वह सदा हंसते रहते थे, उनका कमरा उनके हास्य से भरा रहता था। वह बड़े विनोदप्रिय थे और विनोद ही विनोद में वह शिक्षा दे देते थे। उनका दिमाग सदा ताजा रहता था। शरीर भले ही थककर चूर हो जाय, लेकिन दिमाग कभी नहीं थकता था। ७९ वर्ष की उम्र में भी उनकी स्मरण-शक्ति अच्छे-अच्छे नौजवानों से तेज थी। उनको अपने शरीर, मन और वचन पर पूरा काबू था। वह पूरे संयमी थे। स्त्री और पुरुष का भेदभाव उनके हृदय में से निकल ही गया था। वह प्रेम और दया के सागर थे, मगर साथ ही कठोर भी। उनका हृदय समुद्र की तरह विशाल था और सबका दुःख उसमें समाया रहता था। दूसरों के दुःखों को वह अपना ही दुःख मानते थे और उसे मिटाने का सदा प्रयत्न करते थे। लोभ और अहंकार तो उनको छू ही न गया था। शरीर से दुबले-पतले होते हुए भी उनकी भुजाओं में इतना बल था कि आशीर्वाद देते समय अगर चरबी से भरे शरीर पर भी उनका हाथ पड़ जाता तो वह तिलमिलाता रह जाता। वह कभी खाली नहीं बैठते थे, न किसीको खाली बैठे देखना पसंद करते थे।

नींद पर उनका पूरा काबू था। रेल में वह निर्विघ्न सोते रहते, चाहे कितना ही शोर-गुल क्यों न हो। मोटर में वह तुरन्त ही बच्चों की तरह निद्राके वशीभूत हो जाते थे। जितनी देर में वह उठने को कहते, ठीक उसी समय पर उनकी आंख खुल जाती। हम घबराते रहते कि बापूजी तो सो

रहे हैं और नियत किया हुआ समय निकला जा रहा है—लेकिन वह ठीक समय पर खड़े हो जाते और निश्चित काम करने लग जाते। कोई बच्चा सामने आ जाता तो वह 'आहा' कहे बिना न रहते। बच्चों के सामने जब वह मुंह बनाते, तो पास खड़े साथी अपनी हंसी न रोक पाते। आभा और मनु के कंधों पर पूरा भार देकर जब वह अधर लटक जाते और लड़कियां उन्हें ले चलतीं तो देखने वाले लोटपोट हो जाते।

बापूजी प्रथम कोटि के कर्मयोगी थे। गीता में बताये कर्मयोग का यदि किसीको दर्शन करना है तो वह उनके जीवनचरित्र का अध्ययन करले। वह पूर्ण स्थितप्रज्ञ बनना चाहते थे, इसीके लिए उनका सतत प्रयत्न था। गीता को वह अपना कोष मानते थे, नित्य-प्रति उसका पाठ सुनते थे; मगर ईशावास्य उपनिषद् के प्रथम मन्त्र को वह गीता से भी अधिक महत्व देते थे। उन्होंने कहा था कि भले ही हिन्दू-धर्म के सब ग्रंथ नष्ट हो जायं, केवल एक वह मंत्र शेष रहे तो हिन्दूधर्म ने कुछ नहीं गंवाया। तुलसीकृत रामायण वह अक्सर पढ़ा करते थे। राम का जीवन उन्हें बहुत प्रिय था, इसीलिए तो वह अपने स्वराज्य की कल्पना राम-राज्य की उपमा देकर किया करते थे। कभी-कभी वह भागवत भी सुना करते थे। उन्होंने हर धर्म की पुस्तक से कुछ-न-कुछ सीखा था और संसार के करीब-करीब सभी बड़े धर्मों का अध्ययन किया था।

बापूजी ने अपना कोई गुरु नहीं बनाया, यद्यपि गुरु की खोज में वह रहे। एक बार एक चीनी उनसे मिलने आया और वह एक चीनी मिट्टी का खिलौना दे गया। उसमें तीन बन्दर बैठे थे—एक आंखें बन्द किये हुए था, दूसरा अपने कान और तीसरा अपना मुंह। ये बन्दर हमेशा बापूजी के साथ घूमते थे और उनकी डेस्क पर रखे रहते थे। सच पूछिये तो इन्हें बापूजी अपना गुरु मानते थे। इनकी ओर संकेत करके वह कहा करते—'किसीकी बुराई को मत देखो, न देखने योग्य वस्तु न देखो, जो देखो, पवित्र भावना से देखो; हर वस्तु को देखने का आग्रह भी न करो—यह बात आंख बन्द रखने वाला बन्दर सिखाता है। किसीकी निन्दा न सुनो, सदा अच्छी बातें सुनो, भगवान् के नाम की चर्चा सुनो, हर बात के

सुनने का आग्रह मत रखो, बुरी बात मत सुनो— यह बात कान बन्द रखनेवाला बन्दर सिखाता है। तीसरा बन्दर यह शिक्षा देता है कि जो बोलो सत्य और प्रिय बोलो, जितना आवश्यक हो उतना ही बोलो, बाकी मौन रहो, बोलते रहने का आग्रह मत करो।'

बापूजी जितना महत्त्व प्रार्थना को देते थे उतना ही शरीर से काम करने को। मन प्रभु की याद में लगा रहे, हाथों से उनकी सेवा होती रहे, इस विचार से वह कभी खाली नहीं बैठते थे और सब कामों को उसकी सेवा ही मानते थे। जब उनसे किसी कार्य के लिए आशीर्वाद मांगा जाता तो वह कहते, हर अच्छे काम में मेरा आशीर्वाद है।

शारीरिक श्रम को जितना महत्त्व बापूजी ने दिया उतना किसी और ने नहीं दिया। दक्षिण अफ्रीका की जेल में जाकर उन्होंने पाखाना साफ किया और भंगी के काम को उतनी ही प्रतिष्ठा दी जितनी ब्राह्मण के काम को दी जाती थी। पाखाना साफ करने को उन्होंने एक कला का रूप दे दिया था। उसमें घृणा जैसी बात ही न रह गई थी। सब आश्रम-वासी पाखाना खुद साफ करते थे। वहांके पाखाने बापू की निकाली पद्धति से बने होते थे। यदि खेत में होते तो वहां एक लम्बी खन्दक खोद दी जाती और चटाई का एक चौखटा उसपर खड़ा कर दिया जाता। अन्दर दो तख्ते लगा दिये जाते। शौच हो लेने के बाद खुरपी पर मिट्टी उठा कर उसे ढक दिया जाता, जिसके फलस्वरूप न गंध रह जाती, न घृणा। गड्ढा भर जाता तो टट्टी आगे सरका दी जाती। यदि टट्टी मकान में बनानी होती तो दो बाल्टियां रखदी जातीं। एक पाखाने के लिए दूसरी पेशाब के लिए। पेशाब की बाल्टी टीन के ढक्कन से ढक दी जाती और उसमें पेशाब जाने को सूराख छोड़ दिया जाता। पाखाने की बाल्टी में अन्दर अखबार का कागज लगा दिया जाता और शौच के बाद उसे मिट्टी से ढक दिया जाता। इसके बाद कोई उसे उठा कर ले जाता और खेतों में डाल आता; न बदबू आती, न घृणा होती और न हाथ खराब होते; इतना ही नहीं, कुछ दिनों के बाद वही मल सुन्दर खाद बन जाता।

बापूजी का कमोड उतना ही साफ-सुथरा रहता था जितनी किसी

की भोजन करने की मेज। कमोड कमरे में रखा है, ऊपर कपड़ा बिछा है, उसपर फूलदान रखा है। इसे कमोड कौन कहेगा? जब जरूरत हुई तब काम में ले लिया, नहीं तो बढ़िया मेज। यह भी बापू की कला।

बापूजी ने चमार का काम भी सीखा था। वह चप्पल बना लेते थे। अपना पेशा उन्होंने बुनकर (जुलाहा) लिखवाया था। वह अपना सब काम स्वयं कर लेते थे। रोटी पकाना और कपड़ा सीना भी उन्हें आता था। मेहनत-मजदूरी करने से मजदूर हीन नहीं बनता, ऊपर उठता है, यह पाठ उन्होंने ही सिखाया था। वह ऐसा कोई काम दूसरों को करने को नहीं कहते थे जिसे वह स्वयं करके न देख चुके हों।

स्वच्छता की ओर जितना ध्यान मैंने बापूजी को देते देखा उतना किसी और को नहीं। एक बार मैं उनके साथ एक दूसरे शहर में गया। वहां उनको भोजन कराने का काम मेरे जिम्मे था। उनके इतने समीप रहकर काम करने का मेरे लिए यह पहला अवसर था। मैंने गिलास में दूध भर कर उनकी मेज पर रख दिया। गिलास को ऊपर से साफ नहीं किया, उसपर बाहर की ओर दूध लगा रह गया। दूध का निशान मेज पर पड़ गया। यह देख कर बापूजी ने मुझे सफाई की आवश्यकता काफी देर तक समझाई। उन्हें जरा-सी भी अस्वच्छता सहन न होती थी। छोटी-से-छोटी वस्तु की सफाई की ओर भी उनका ध्यान चला जाता था। खाना खाते समय क्या मजाल जो उनके कपड़े पर धब्बा पड़ जाय! तकिये पर यदि गिलाफ नहीं होता और उसपर तेल का धब्बा पड़ जाता तो वह उसे फौरन धोने को कहते। टब यदि किसी दिन मंजा न होता तो वह तुरन्त भांप लेते। गर्म पानी का गिलास पकड़ाते समय अनायास अंगूठा गिलास के अन्दर चला जाता तो उनका ठपका मिले बिना न रहता। कहते, इस हिस्से पर से होकर पानी मुंह में जायगा, मानो गंदगी पेट में गई। पानी की बोतल की डाट को पकड़ते समय यदि उसके अन्दर के भाग पर हाथ लग जाता तो वह उसी वक्त कहते कि यह हिस्सा पानी में रहता है, इसे धोकर लगाना। स्नान कराते समय यदि जमीन पर बिछे तौलिये पर भूल

से पैर पड़ जाता तो उसी वक्त बापूजी सवाल कर बैठते कि गंदा पैर इसपर कैसे गया ? उनका चमचा या कांटा साफ न मंजा होता तो उनकी निगाह में आये बिना न रहता। एक दिन कांटे के अन्दर मिट्टी रह गई थी। बापूजी ने तुरन्त उसकी ओर ध्यान दिलाया। वह घूम कर आते तो फौरन पैर कपड़े से साफ कराते और तब गद्दी पर बैठते। उनके कपड़े रोज साबुन से धुलते थे। वे प्रायः न तो धोबी को दिये जाते, न उनपर इस्तरी होती, फिर भी वे दूध की तरह सफेद रहते थे। उनका शरीर कुन्दन की तरह चमका करता था, यद्यपि उन्होंने शरीर को कभी साबुन से नहीं धोया। उनके तलवे नवजात शिशु की तरह साफ और कोमल थे। वह कहा करते थे कि शुद्ध शरीर में ही शुद्ध मन रह सकता है। सफाई ईश्वर से दूसरे दर्जे पर है, यह उनके रहन-सहन के ढंग से साफ सिद्ध होजाता था।

जितनी सादगी से उन्होंने जीवन बिताया शायद ही कोई अन्य सन्त इतनी सादगी से रह सका हो। उनमें स्वच्छता और सादगी दोनों साथ-साथ थीं— उनकी आवश्यकताएं बहुत कम थीं, किसी वस्तु के अभाव में वह परेशान न होते थे।

एक बार वह उड़ीसा की यात्रा कर रहे थे। वहां एक स्त्री को उन्होंने बहुत गंदे और फटे कपड़े पहने देखा। उन्होंने कहा कि मैं गरीबी को तो समझ सकता हूं मगर इस गंदगी को नहीं समझ सकता। क्यों नहीं स्नान करके दूसरा स्वच्छ कपड़ा बदल लेतीं और इसे धो डालतीं ? मगर उन्हें पता लगा कि उस बेचारी के पास दूसरा कपड़ा ही नहीं है। पूज्य बा को लेजाकर उसने अपना घर दिखा दिया और कहा, बताओ मैं दूसरा कपड़ा कहां से बदलूं ? बापूजी को यह बात जब बा ने बताई तो वह हैरान रह गए। वह भारतमाता की गरीबी को तो जानते थे, मगर वह इस हद तक पहुंच चुकी है इसकी कल्पना उन्होंने न की थी। उसी वक्त से उन्होंने घुटनों तक की धोती और छोटी चादर धारण कर ली।

बापूजी के लिए कोई वस्तु निरुपयोगी न थी। कागज का एक छोटा-सा टुकड़ा, एक छोटी-सी पिन, कपड़े का एक साधारण रूमाल उनके लिए उतनी ही उपयोगिता रखता था, जितनी एक पूंजीपति के लिए करोड़-

दो करोड़ की दौलत। क्या मजाल जो उनकी कोई वस्तु इधर-से-उधर हो जाये। उसको तलाश किये बिना वह चैन से नहीं बैठते थे, चारों ओर दौड़ मच जाती थी और जबतक वह वस्तु मिल न जाती थी या उसके गुम होने के कारण का पता न लग जाता था तबतक न उन्हें शांति मिलती थी, न उनके साथियों को। वह हिंदी की एक पुस्तक पढ़ रहे थे। उसके ऊपर का कागज उतर गया। सफाई करने वाले ने उसे निकम्मा समझकर रद्दी में फेंक दिया। मैं जो कमरे में घुसा तो देखा सब परेशानी की हालत में हैं और सफाई करनेवाला अपराधी की-सी सूरत बनाये खड़ा है। पूछा तो पता लगा कि पुस्तक के ऊपर का कागज नहीं मिलता। जबतक वह मिल नहीं गया, सब लोग परेशान रहे। बापूजी का छोटा-सा रूमाल जब कभी इधर-उधर हो जाता था या उनकी पेंसिल का छोटा-सा टुकड़ा गुम होजाता था तो वह घटना एक बड़े तूफान के आने से कम न होती थी। वर्धा में जब वह मगनवाड़ी में रहते थे तो पाखाने के बाहर पड़ी साबुन की टिकिया उठा लाये, जो पानी में गल रही थी। करीब आधा घंटा उन्होंने यही बात समझाई कि हमें देश के धन को इस प्रकार बरबाद करने का कोई अधिकार नहीं है, हमारा देश गरीब है और गरीबों की तरह ही हमें अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। वह प्रायः रद्दी तारों और चिट्ठियों के लिफाफों के उलटी तरफ अपने महत्त्वपूर्ण लेख लिखा करते थे। कपड़े के नीचे अखबार लगाकर सर्दी से बचने का उन्होंने एक अच्छा साधन निकाला था। टूटे सूत के टुकड़ों को कपड़े में भर कर उनका पिनकुशन बनाया गया था। एक बार टाइपिस्ट फाइल खरीद लाया। बापूजी ने उसे वापस करवा दिया और कहा कि अखबार के कागजों से वह बनाई जा सकती है।

वह हर बात में सनातनी थे। जो कपड़े वह पहनते थे वे बिना उनकी इजाजत के बदले नहीं जा सकते थे। पेट पर मिट्टी रखने का कपड़ा यदि दूसरे दिन बदल जाता तो उनकी निगाह उसपर पड़े बिना न रहती। बदन पोंछने का तौलिया यदि दूसरा होता तो उसका कारण बताना पड़ता। खाना खाने के बर्तनों में यदि उलटफेर हो जाती तो उसका उन्हें ज्ञान कराना होता। पानी पीने की बोतल यदि टूटकर दूसरी आती तो टूटने की घटना

बतानी पड़ती। तलवों पर घी लगाते समय का कपड़ा भी यदि बदल जाता तो उसकी भी सफाई देनी पड़ती।

यरवदा जेल से छूटते समय लोहे का एक तसला, जिसमें कैदी रोटी खाते हैं, उनको भेंट में मिला था। वह आखिर समय तक उनके हाथ-मुंह धोने के काम आता रहा। उनकी पीतल की थूकदानी, जो हत्यारे के धक्के से मनु के हाथ से गिर पड़ी थी, बरसों से मैं उनके पास देखता आया था। उनका कांसी का भारी गिलास और काठ का चमचा उनके साथ कई जेल-यात्राएं कर आया था। उनकी लाठी ने न जाने कितने देशों का भ्रमण किया होगा। इन्दिरा नेहरूवाली उनकी घड़ी तो जबतक चोरी न चली गई तबतक बराबर उनकी कमर की रस्सी के साथ लटकती रही। इस घड़ी की भी एक छोटी-सी कहानी है। बापूजी जब आनंद-भवन में ठहरे हुए थे तो जवाहरलालजी ने यह घड़ी इन्दिरा से लेकर उन्हें दे दी। तब से, यानी पिछले १५ वर्ष से, यह उन्हींके पास थी। सन् १९४६ में वह पटने से आ रहे थे। रेल के डिब्बे में बैठकर काम करते ही रहते थे; घड़ी उनके पास रखी थी। किसी स्टेशन पर वह दर्शकों को दर्शन देने उठे। आकर देखते हैं तो घड़ी गायब। सब अखबारों में घड़ी के चुराये जाने का समाचार निकला। मगर जिस भाई ने भी चोरी की शायद बापूजी की निशानी अपने पास रखने के अभिप्राय से ही की और इसीलिए उसने घड़ी लौटाई नहीं। घड़ी के चोरी जाने की बात विदेशी समाचारपत्रों में भी छपी। । विलायत के एक कारखानेवाले ने एक नई घड़ी बापूजी के पास भेजी जिसे उन्होंने लगाना शुरू भी कर दिया। मगर वह घड़ी बिलकुल साधारण थी, चलकर ही न देती थी। तब मैंने अपनी घड़ी बापूजी को देकर वह घड़ी बदले में उनसे ले ली। वह आज भी मेरे पास है। मेरी घड़ी में न एलार्म था, न रेडियम, इसलिए वह भी उनके काम न आई। आखिर उसी कारखाने ने, जहां की बनी इंदिरा नेहरू वाली घड़ी चोरी गई थी, एक नई घड़ी बापूजी के लिए भेंट में भेजी। उसीको आजकल वह लगाते थे।

उनकी माला सदा उनके सिरहाने रखी जाती थी, वैसे ही उनकी एलार्म वाली घड़ी। सोमवार के दिन उनका मौन पैड भी उनके पास

रखा जाता था, क्योंकि उस दिन वह लिखकर बातें करते थे। मौनवार के कितने ही कागज के टुकड़े उनके साथियों के पास होंगे।

नवाखाली में उन्हें नारियल के बने पत्तों की एक टोपी मिली, जिसकी कीमत दो पैसे होगी। उसे वह दिन भर पहने धूप में बैठे रहते थे और उसकी प्रशंसा करते कभी थकते न थे।

वर्ष में दो उपवास वह नियम से करते थे, छः अप्रैल और १३ अप्रैल को। यह दोनों उपवास पूरे २४–२४ घंटों के होते थे।

उनकी खड़ाऊं में पूरे पंजे के निशान पड़ जाते तब कहीं वह उसे बदलते। चप्पल नीचे से घिस जाती तो बदलने की बजाय वह उसे ठीक करवा मंगाते। वह कभी शरीर पर साबुन नहीं लगाते थे, तौलिये से रगड़कर शरीर साफ कर लेते थे। हजामत वह टब में लेटे-लेटे बिना शीशा देखे और बिना ब्रश-साबुन के कर लेते थे। उनके सिर के बाल जब वह सुबह की सैर के बाद पैर धुलवाते होते तो कोई लड़की मशीन फेरकर काट देती थी। नाखून वह कैंची से बातें करते-करते खुद ही काट लेते थे। इन गौण बातों के लिए उनके पास अधिक समय देने को था नहीं। वह कभी फाउन्टेनपेन से नहीं लिखते थे। मैं जल्दी में हस्ताक्षर करवाने को भूल से कभी फाउन्टेनपेन दे भी देता तो वह उसे काम में न लाकर होल्डर से ही दस्तखत करते। उनकी दवात भी छोटी-सी थी। सफर में उस दवात की स्याही किसी शीशी में उलट ली जाती और मुकाम पर पहुंचकर उसमें भर दी जाती। एक कलमदान में उनकी कलमें, पेंसिल, चाकू, कैंची तथा अन्य जरूरी चीजें भरी रहतीं। वह कलमदान उनके खादी के थैले में रहता था। यह थैला हमेशा उनके साथ रहता था, जो दफ्तर कहलाता था। इस थैले में उनके जरूरी कागजात, लिखने का सामान, चंद जरूरी पुस्तकें, जैसे गीता, आश्रम-भजनावली रहती थीं। यात्रा में सब चीजें पीछे रह सकती थीं मगर थैला नहीं छूट सकता था। रेल में हों, या मोटर में, थैला उनके साथ रहता था और सामान उतारते समय सबसे पहले वही सम्हाला जाता था। रेल में या मोटर में सवार होते ही वह अपना काम शुरू कर देते थे। यात्रा में वह

अधिक-से-अधिक लिखने का काम करते थे, रेल या मोटर का हिलना उनको बाधा नहीं पहुंचाता था। जब दायां हाथ लिखते-लिखते थक जाता तो वह बाएं हाथ से लिखने लगते थे। पढ़ने के लिए उन्हें प्राय: कमोट पर बैठने का समय मिलता था।

वर्ष में उनके दो जन्म-दिन मनाये जाते थे। एक हिन्दी हिसाब से आश्विन कृष्णा १२ को, जिसका नाम उन्होंने रहटिया बारस (चर्खाद्वादशी) दिया था, और दूसरा अंग्रेजी हिसाब से २ अक्तूबर को; दोनों दिन वह नये कपड़े बदलते थे, वह भी अपने उन साथियों को संतोष देने के लिए, जो अपने हाथ से कते सूत का कपड़ा बुनवाकर उस दिन के लिए भेंट करते थे। मैं जब इस प्रकार भेंट करता था तो उनके पहले वर्ष के पुराने कपड़े ले लेता था। मेरे पास वही कपड़े अब उनकी निशानी रह गए हैं।

रोजाना चर्खा चलाना उनका निश्चित नियम था। उपवास के दिनों में भी जबतक बैठने की शक्ति रहती, वह इस नियम को छोड़ते न थे। बीमारी की हालत में भी कदाचित् ही कातना छूट पाता था। वह दोनों हाथों से कात सकते थे।

भोजन को बापूजी ने एक विज्ञान ही बना दिया था। इस विषय में उनका कोई-न-कोई प्रयोग चलता ही रहता था। उनका कहना था कि भोजन क्षुधा-निवारण के लिए है, जबान के स्वाद के लिए नहीं। खाना पकाने में कम-से-कम समय जाय, इसके लिए और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उन्होंने कच्चे भोजन पर कितने ही प्रयोग किये। मिरच-मसालों को तो उन्होंने त्याग ही दिया था। नमक को भी बीच-बीच में छोड़ देते थे। कच्चा अथवा भाप से पका साग, रोटी, जिसे बीच-बीच में वह बन्द कर देते थे और बकरी का दूध, यही उनका आहार था। इनके अतिरिक्त वह गरम पानी के साथ नींबू का रस और शहद लिया करते थे, और शक्ति कायम रखने के लिए गुड़। बोलते-बोलते जब वह बहुत थक जाते तो गुड़ खाकर अपनी निर्बलता दूर कर लेते थे। उनका शरीर तराजू की तरह था। थोड़ा इधर-उधर होने से उसमें अंतर पड़ जाता था। साफ जबान को वह स्वास्थ्य की निशानी मानते थे। जरा भी खराब दीखती तो वह खाने

में परिवर्त्तन कर लेते। अधिक मैली दिखाई देती तो एनीमा ले लेते, या अण्डी का तेल पीकर पेट साफ कर लेते। पेट की सफाई को वह प्रथम स्थान देते थे। पेट की खराबी सब बीमारियों की जड़ है, ऐसा वह मानते थे। उनका सबसे अधिक समय खाने में जाता था। वह खूब चबाकर खाते, दांतों का काम पेट से न लेते थे। खाने की कला को उन्होंने पूर्णता तक पहुंचा दिया था। कई बार तो प्रयोग करने में उनकी जान खतरे में पड़ गई। एक बार मूंगफली से और दूसरी बार कच्ची चीजों के प्रयोग से वह इतने बीमार हुए कि मरणप्राय हो गए। उनका वजन भी एक नियम में रहता था, उसे वह बढ़ने न देते थे।

कई बार खाते-खाते मुलाकात चलती रहती, पूरा घंटा बीत जाता, पर भोजन खतम न हो पाता। हो कैसे, बोलने में सारा समय जो चला जाता था। आखिर वह खाना छोड़ देते और हाथ धो लेते। इसलिए जिस दिन जल्दी का काम होता, वह चबाकर खानेवाला भोजन छोड़ कर पीनेवाला भोजन कर लिया करते थे।

पानी वह सदा उबला हुआ पीते थे, जो ठंढा करके शीशे की बोतल में भरकर उनके पास रखा रहता था। इसी पानी से वह कुल्ला कर लेते थे। स्नान वह बारह मास गर्म पानी से करते थे। मगर मुंह सदा ठंढे पानी से धोते थे। गर्मी के दिनों में ठंढे पानी का कपड़ा उनके पीने के पानी की बोतल पर लिपटा रहता या बोतल बर्फ में दबी रहती. मगर बर्फ वह पीते कभी नहीं थे। पेट पर जो मिट्टी बांधी जाती थी वह भी खूब ठंढे पानी में भिगोई जाती थी, गर्मियों के दिनों में उसमें बर्फ डालदी जाती थी। मिट्टी जब उतरती तो गर्म हो जाया करती।

मालिश वह सरसों के तेल की करवाते थे। उसमें नींबू का रस मिलवा देते थे। नींबू के बचे टकड़ों को वह फेंकते नहीं थे, बल्कि उसके पूरे रस को सिर और बदन पर मल लिया करते थे।

वह कभी ब्रश नहीं करते थे। उन्होंने सब दांत निकलवा दिये थे, बनावटी दांत रोटी खाते समय लगाते थे जिन्हें वह स्वयं साफ किया करते थे। सुबह उठते ही वह मुंह में घर का बना मंजन डालकर कीकर की दातुन

किया करते थे। रात को सोते समय कीकर की मोटी दातुन के एक सिरे को खूब कूटकर और उसकी कूंचीसी बनाकर पानी भरे गिलास में उनके सिरहाने मेज पर रख दी जाया करती थी। मंजन एक शीशी में रखा जाता था। बादाम के छिलके जलाकर उसकी राख में नमक मिलाकर बनाया जाता था। एक बोतल में पानी, लोहे का तसला और पेशाब करने की बोतल भी उनके पास रखी जाती थी।

प्राकृतिक चिकित्सा पर बापू की अटूट श्रद्धा थी। उनकी सबसे बड़ी औषधि राम-नाम थी। उनका कहना था कि यदि राम पर अटल विश्वास है तो किसी दूसरी औषधि की आवश्यकता ही नहीं। राम-नाम के बाद हवा, पानी, मिट्टी और सूर्य-प्रकाश—ये उनकी चार औषधियां थीं। मिट्टी को तो वह मां के दूध के समान मानते थे। पेट पर मिट्टी बंधवाना उनका रोज का नियम था। जरूरत के अनुसार वह माथे पर भी मिट्टी बांधते थे। एक बार उनकी ठोड़ी पर एक मस्सा निकल आया तो उसपर भी मिट्टी बांधी गई। खाना खाते समय एक दिन चील ने झपट्टा मारा और उनके अंगूठे से खून निकल आया। उसपर भी मिट्टी ही बंधी। किसीके चोट लगे, फोड़ा-फुंसी निकले, हर काम में मिट्टी का प्रयोग होता था।

मिट्टी जितना ही वह पानी को उपयोगी गिनते थे। एक दिन वह मोटर से उतर रहे थे कि मैंने बिना ध्यान दिये मोटर का दर्वाजा बंद कर दिया। उसमें उनकी दो अंगुलियां भिच गई। मैं तो चुप रहा, करता भी क्या, पर उन्होंने तुरंत अंगुलियां पानी में डाल दीं। चोट इतनी कड़ी थी कि क्षण भर के लिए वह बेहोश हो गए थे। सबने दूसरा उपचार करने को कहा, मगर उन्होंने टिंचर तक नहीं लगाया, पानी में ही अंगुलियों को रखा और थोड़ी देर में उठकर काम करने लगे। वापसी पर मैं सिर लटकाये चल रहा था। मुझसे भारी गुनाह हो गया था। इतनी असावधानी किस काम की ? बापूजी से मेरी मनोदशा छिपी न रही। उन्होंने मुझे सान्त्वना दी और जो हो चुका था उसका विचार छोड़ देने को कहा।

मिट्टी और पानी की ही तरह बापूजी सूर्य के भी पुजारी थे। जाड़ों में वह दिनभर धूप में पड़े रहते थे। और हवा, वह उनका जीवन

थी। कितनी ही कड़ाके की सर्दी पड़ रही हो, वह निगाह उठाकर देखते थे कि कहीं सारे किवाड़ बंद तो नहीं हैं। जहां मैं सोता था, उधर दरवाजा था। मुझे हवा आने के लिए थोड़ा दरवाजा खुला रखना पड़ता था। मालिश के कमरे में दो-दो हीटर लगाने पड़ते थे, मगर साथ ही हवा आने के लिए दरवाजा भी खोलना पड़ता था। दिसम्बर-जनवरी की कंपाने वाली सर्दी में वह नंगे पैर, नंगी टांगों एक गर्म चद्दर ओढ़कर घूमते थे। उन्हें खुले आकाश के नीचे सोना पसंद था, जैसे कि वह तारों से बातें करना चाहते हों। मगर उनके खून के दबाव के कारण डाक्टरों ने उन्हें सर्दी और ओस में खुले में सोना मना कर दिया था।

वह सदा तन कर सीधा बैठना पसंद करते थे। कमर झुकाकर बैठने को वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते थे। जहां उन्होंने किसी को झुककर बैठे देखा उसे टोका। सीधे बैठने के लिए वह पीठ के पीछे काठ का एक तख्ता रख दिया करते थे ताकि कमर झुकी न रहे।

वृद्धावस्था के कारण ठंढ के दिनों में उनका शरीर और उनके पैर बहुत ठंढे हो जाते थे, इसलिए सोते समय खून का दौर बढ़ाने के लिए कुछ मिनट कसरत करके वह शरीर को गर्म कर लिया करते थे।

सुबह-शाम आध-आध घंटे घूमने की चर्या वह कभी न छोड़ते थे। काम करते-करते रात के नौ-दस क्यों न बज जायं, छुट्टी मिलते ही वह घूमने निकल पड़ते थे। इसीसे उनका स्वास्थ्य टिका हुआ था, कभी-कभी वह इतने वेग से चलते थे कि नौजवान भी उनके साथ चलने में हांफ जाते थे।

जो बात एक बार उनके कार्यक्रम में शामिल हो जाती थी, वह उस समय तक चलती ही रहती थी जबतक उसके बदलने का कारण उपस्थित न हो जाय। एक दिन पं० जवाहरलाल नेहरू ने कह दिया कि पंजों के बल टांगें अकड़ाकर खड़े होने से शरीर की थकान जाती रहती है। उसी दिन से बापूजी ने सोने से पूर्व कुछ क्षण के लिए पंजों के बल खड़ा होना शुरू कर दिया। दोनों लड़कियों के कंधों पर हाथ रखकर वह पांच-छः बार ऊपर को उचक जाते और फिर धीरे-धीरे नीचे हो जाते थे।

बापूजी हरएक की भावना का खयाल रखते थे। वह शरीर दबवाते थे, इसलिए नहीं कि इसकी उन्हें जरूरत थी; बल्कि इसलिए कि उनके निकट रहने वाले उनके कोमल शरीर को थोड़ा-सा दबाकर अपने को कृतार्थ करना चाहते थे। रात को सोते समय आभा, सुशीलाबहन, मीराबहन और दूसरे साथी उनके पैर दबाते। कभी लक्ष्मीबहन की और मेरी भी बारी आ जाती। मनु उनके सिर पर तेल मला करती थी। पिछले जाड़ों में बापूजी के लिए एक रजाई बनकर आई और मैं एक गुदमा ले गया। अब प्रश्न उठा कि किसे ओढ़ें। तय हुआ कि बारी-बारी से दोनों को ओढ़ेंगे, किन्तु कुछ दिनों पीछे उनके पास रजाई रखी जाने लगी, गुदमा अलग पड़ा रहा। मैंने तो कुछ कहा नहीं; उनकी पसन्द में मेरी पसन्द थी, लेकिन एक दिन मैंने बापूजी को लड़कियों से कहते सुना—"ब्रजकृष्ण मन में कहेगा कि मैं तो बापू के लिए गुदमा लाया, वह ओढ़ते भी नहीं।" तुरन्त रजाई हटा दी गई और बापूजी गुदमा ओढ़ने लगे।

वह हरएक का कितना खयाल रखते थे यह कैसे बताऊं? मैं उनके पास ही सोता था। दो रात काम में मुझे देर हो गई। सोने में बारह बज गए। बड़े दबे पैरों में अपने बिस्तरे पर जाकर सोया कि कहीं उनकी नींद न खुल जाय। मगर उनको पता चल ही गया। सुबह ही पूछा—"रात इतनी देर कैसे हो गई?" वह प्रायः मुझे जल्दी सो जाने के लिए कहते रहते। उनको हरएक के खाने का, सोने का, आराम का पूरा ख़याल रहता था। यदि कोई बीमार हो जाता तो उसे अपनी बीमारी भुलाकर बापूजी की असुविधा का अधिक विचार करना पड़ता, क्योंकि बीमार होने का अर्थ था बापूजी के बढ़े हुए कामों में एक का इजाफा करना। उन्हें बीमार की पूरी खबर मिलनी चाहिए; उसको क्या दवा मिली, क्या खाना मिला, क्या हालत रही इन सब बातों का पता उन्हें लगता रहना चाहिए, वरना उन्हें संतोष न होगा। वह बीमार को एक बार देखने जरूर जाते थे। जहां किसी मिलनेवाले की बीमारी की बात सुनी कि उसके घर देखने पहुंचे। एक बार किदवई साहब मोटर से गिर पड़े, हाथ टूट गया। उन्हें देखने बापूजी होटल पहुंचे। इसी तरह एक बार

वह राजेन्द्र बाबू को देखने उनके घर और होरेस को देखने अस्पताल गए। मतलब यह कि बीमार के लिए वह समय निकाले बिना न रहते।

उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान था, उनके लिए एकान्त जैसी कोई वस्तु ही न थी। वह गुप्त-से-गुप्त बात बता देते थे। मैं उनसे जब जो चाहता, पूछ लेता था और वह खुले दिल से सब कुछ बता देते थे। पिछले दिनों तो वह मुझको अपने साथ गवर्नर-जनरल के घर ले जाते थे। वहां से मुलाकात करके निकलते तो मेरे पूछने पर सारी बातें बता देते। उनकी डाक, उनके पत्र, उनके तार मेरे लिए खुले थे। उन्होंने कभी मेरे ऊपर अविश्वास नहीं किया। मेरे स्वास्थ्य का जितना ध्यान उन्होंने रखा उतना शायद मेरी मां ने भी नहीं रखा होगा और जब एकबार मैंने उनसे कहा कि आप मेरी मां बन जाओ तो वह बोले कि मां बनने की योग्यता मेरे में कहां ? क्या कहूं उनका प्रेम ! मेरे लिए तो जैसे दुनिया ही उलट गई है।

बापूजी ने कभी किसीका अविश्वास नहीं किया। कितनों ने उन्हें धोखा दिया। फिर भी उन्होंने अपना विश्वास नहीं हटाया, उनका मत था कि हर व्यक्ति में गुण-दोष दोनों मौजूद हैं। सुधरने का मौका हरएक को देना चाहिए। आज नहीं तो कल वह जरूर अपनी भूल स्वीकार करेगा और पश्चात्ताप करेगा। वह सजा देने में विश्वास नहीं रखते थे। सच्ची सजा आदमी का अपना पश्चात्ताप है। भूल को वह फिर न करे यही पश्चात्ताप का अर्थ है। ऐसी उनकी मान्यता थी।

बापूजी अपनी छोटी-से-छोटी भूल को भी उसका भान होते ही तुरंत स्वीकार कर लेते थे और उसे प्रकट करने में संकोच न करते थे। सत्याग्रह युद्ध में कई बार अपनी भूलों को हिमालय जितनी बड़ी बतला कर उन्हें स्वीकार किया। वह अपने साथियों की भूलों को भी बिना किसी लिहाज के प्रकट कर देते थे। यह विशेषता जो उनकी सत्य-निष्ठा का ही परिणाम थी, उनके सिवा और किसी नेता में देखने में नहीं आई।

एक पत्र में मैंने उन्हें लिखा था कि लोग आप की बड़ी

आलोचना करते हैं, गालियां तक देते हैं। उत्तर में उन्होंने लिखा था—

"मुझे गालियां मिलती हैं सो अच्छा लगता है। इसका बड़ा लाभ यह है कि सब विगाड़ दूर हो जायगा। मेरी पूजा करनी और मेरा कहना नहीं करना, उससे मुझे गाली देना मैं बहुत अच्छा समझता हूं। गाली देने वाले तो दिल से मुझे बुरा मानते हैं। जब उनका भ्रम टूट जायगा, तब सब कुछ करेंगे।" वर्धा—२८-८-३५.

दक्षिण अफ्रीका से आकर जिस दिन उन्होंने भारत-भूमि पर पैर रखा तबसे मरणपर्यन्त वह देश-निर्माण में ही लगे रहे। इस देश का जितना भ्रमण उन्होंने किया, किसी दूसरे नेता या महापुरुष ने नहीं किया था। काश्मीर से कन्याकुमारी और कराची से ब्रह्मप्रदेश तक कितनी ही बार उन्होंने यात्राएं कीं और कितनी ही जगह तो वह एक से अधिक बार गए। जहां-जहां उनके चरण की छाप पड़ी, वह प्रदेश पवित्र हो गया। जवाहरलालजी के शब्दों में 'जहां वह बैठ जाते थे वही स्थान मंदिर बन जाता था और जहां भी उनके चरण पड़ जाते थे वह स्थल पवित्र हो जाता था।' देश-हित के लिए उन्होंने हर प्रकार की यातनाएं सहीं; १७ वार वह जेल गये और १७ वार ही उन्होंने उपवास किया; तीन वार इक्कीस-इक्कीस दिन तक वह निराहार रहे। उनके उपवासों में जिन्हें उनके निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वही बता सकते हैं कि उपवास-काल में वह कितनी यातना सहन करते थे। उनके डाक्टर घबरा उठते थे मगर उन्हें अपने प्रभु पर अटल विश्वास था; वह निश्चिन्त रहते थे। वह यही कहते रहते थे कि जबतक प्रभु को मुझसे काम लेना है, मेरा बाल बांका नहीं हो सकता।

१९२४ के उपवास में एक दिन डा. अन्सारी बहुत घबरा गए, क्योंकि बापू के गुर्दों की हालत खराब हो गई थी। उन्होंने बापू से आग्रह किया कि वह संतरे का थोड़ासा रस लेलें। बापू ने कहा, सुबह तक देखो क्या होता है। सुबह डाक्टर साहब ने पेशाब की परीक्षा की है। वह सचमुच नार्मल हो गया था। देखकर वह हैरान रह गए।

आगाखां महल में भी यही हुआ। यहां डा० विधानचंद्र राय

घबरा उठे मगर परमात्मा की कृपा से हालत स्वयं स्वाभाविक हो गई। यह करिश्मा देखकर डा० विधान राय ने कहा था कि हमारी हिकमत वहां तक नहीं पहुंची है जहां बापू पहुंच गए हैं।

वापूजी अपने साथ कम-से-कम सेवक रखते थे; खासकर यात्रा में। एक वार तो वह केवल महादेवभाई को ही साथ लेकर यात्रा को चल पड़े थे। नवाखाली की यात्रा में उन्होंने अपने सब साथियों को जुदा-जुदा स्थानों पर नियुक्त कर दिया और स्वयं अकेले नंगे पैर निकल पड़े। मगर वह मिट्टी में से सोना बनाना जानते थे। जहां वह जाते, वहीं अपने भक्त और सेवक पैदा कर लेते। नये आदमी से काम लेना कुछ आसान नहीं होता, खासकर उससे जो काम करानेवाले के स्वभाव को जानता न हो। मगर बापूजी साधारण व्यक्ति को भी बड़ी जिम्मेदारी का काम सौंप देते थे। लोग अनुमान करते थे कि न मालूम उनका कितना बड़ा महकमा होगा, उनके न मालूम कितने मंत्री होंगे। उन्हें क्या मालूम कि बापूजी के पास तो शिवजी की बरात रहती थी और उसीसे वह अपना काम निकाल लेते थे। वह अपना सब काम स्वयं ही कर सकते थे, इसलिए वह आजीवन कभी किसीके आश्रित न रहे।

दानमें बापूजी के पास करोड़ों रुपये आए, मगर उन्होंने एक कौड़ी भी इधर-से-उधर नहीं होने दी। उनके पास पाई-पाई का हिसाब रहता था हिसाब का पक्का जितना मैंने उन्हें देखा उतना और किसीको नहीं आये हुए पैसे को वह खूब सोच-समझकर उपयोग में लाते थे। धनाभाव से उनका काम कभी नहीं रुका। वह कहते थे कि काम करनेवाले में सचा और तत्परता होनी चाहिए, पैसा स्वयं आ जायगा। एक वार पत्र द्वार मैंने उनसे पूछा कि आप सट्टेवालों से दान क्यों लेते हैं? उन्होंने उत्त दिया—"सट्टे और शराब में मैं तो मुकाबला ही नहीं पाता हूं काफी शराब के व्यापारियों से मैंने दान लिया है। वेश्याओं ने भी दिय है। किसका पैसा छोडूं और किसका लूं? हां, गौहरजान के १२,००० मैंने छोड़ दिये थे, क्योंकि शर्त यह थी कि उसका गाना सुनने में जाऊं लेकिन अलीभाई गए और पैसे ले आए। कहो, अब क्या किया जाय

धर्म की कहानी अजीब है।" (२०-१०-३९)

दुनिया में बापूजी जैसे कार्यव्यस्त बहुत ही कम होंगे। फिर भी वह सब काम समय पर कर लेते थे, क्योंकि उनका जीवन शुरू से ही सुव्यवस्थित और सुनियन्त्रित रहा था।

जितने लेख और पत्र बापूजी ने लिखे, शायद ही किसी दूसरे ने लिखे होंगे। अपने साठ वर्ष के सामाजिक जीवन में उन्होंने हजारों पत्र और लेख लिखे होंगे, जिनका यदि संग्रह किया जाय तो दस हजार पन्नों से कम की पुस्तक न बने। अकेले मेरे ही पास उनके १५८ पत्र हैं जिनमें से १५० के करीब तो उनके अपने हाथ के लिखे हुए हैं। उनकी डाक थैला भरकर आती थी। दुनिया का शायद ही कोई ऐसा देश हो जिससे उनका पत्र-व्यवहार न रहा हो। पृथ्वी के हर देश में उनके परिचित प्रशंसक मौजूद थे। इतना कार्य होते हुए भी वह पत्र का उत्तर देने में देरी न करते थे और प्रायः अपने हाथ से ही उत्तर लिखा करते थे।

बापूजी डाक के समय के बड़े पाबंद थे, यात्रा में जैसे ही किसी स्थान पर पहुंचते वहां से डाक जाने का समय मालूम करते। आश्रम तथा अहमदाबाद में आने और जाने वाली गाड़ियों के समय उन्हें सदा मालूम रहते थे। और वह बराबर इस बात का ध्यान रखते थे कि डाक समय पर चली जाय। जो दिन 'हरिजन' में लेख भेजने का होता था उस दिन कैम्प में मानो तूफान आ जाता था। कितना मैटर तैयार हो गया; इसकी खबर उन्हें मिलती रहती थी। यदि कभी मैटर की कमी रह जाती, तो वह उसे पूरा कर देते थे। समय पर अखबार निकालने को वह स्वराज्य-प्राप्ति के ही बराबर महत्व देते थे। उन्होंने इतनी लम्बी-लम्बी यात्राएं कीं, किंतु उनका साप्ताहिक कभी देर से नहीं निकला। अखबार-नवीसों में बापूजी प्रथम स्थान रखते थे और जानते थे कि समय की पाबंदी का कितना महत्व है।

बापूजी ने अपने अखबार में कभी विज्ञापन नहीं लिये। वह कहते थे कि जबतक जनता मेरे विचारों को पसन्द करती है और उनकी जरूरत महसूस करती है और पढ़ना चाहती है तबतक वह मेरे अखबार को

इतनी अधिक संख्या में खरीदेगी कि खर्चा निकल आयगा और यदि जनता मेरा-पत्र पसंद नहीं करती है तो उसे जनता पर भाररूप बनाना उचित नहीं है। अखबारों के ग्राहकों की संख्या घटती-बढ़ती रहती थी और उसी से वह जनता की राय का अंदाजा लगा लेते थे। एकबार तो उनके अखबार की संख्या साठ हजार तक पहुंच गई थी।

अपने साप्ताहिकों—पहले 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' बाद में 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु' और 'हरिजन-सेवक'—द्वारा बापूजी ने देश में एक नये जीवन का संचार कर दिया था। उनके ये पत्र हजारों की संख्या में पढ़े जाते थे और भारत के सब मुख्य दैनिक इनके लेखों को अपने पत्रों में उद्धृत करते थे। एक अंग्रेज़ी अखबार ने पैसा देकर बापूजी के लेखों का सर्वाधिकार लेना चाहा, मगर उन्होंने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया। उनके लेख भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपते थे। आरम्भ में उनके कुछ लेख विद्रोहात्मक ठहराये गए थे और उनके लिए उन्हें छः वर्ष का कारावास मिला था। जिन्होंने १९४२ के 'हरिजन' के लेख पढ़े हैं, वे जानते हैं कि किस तरह बापूजी ने कुछ दिनों में ही देश भर में क्रांति की आग भड़का दी थी और "भारत छोड़ो" का आंदोलन खड़ा कर दिया था।

बापूजी की लिखने की शैली इतनी ओजस्वी थी कि उससे मुर्दा दिलों में भी जीवन का संचार हो जाता था। उनकी अंग्रेजी की शैली तो प्रामाणिक मानी जाती थी। अच्छे-अच्छे अंग्रेज भी उन जैसी अंग्रेजी नहीं लिख पाते थे। गुजराती का तो उन्होंने रूप ही बदल दिया था। आधुनिक गुजराती के निर्माता वही हैं। हिन्दी की सेवा जितनी उन्होंने की उतनी किसी और ने नहीं। उनसे पहले हिन्दी लड़कियों की भाषा मानी जाती थी, आज वह राष्ट्रभाषा बनने जा रही है। हिन्दी के साथ उन्होंने उर्दू की सेवा भी कुछ कम नहीं की और दोनों भाषाओं को मिलाकर 'हिन्दुस्तानी' का प्रचार किया।

एक बार लिख लेने पर गांधीजी अपने लेखों में क्वचित् ही कोई कांट-छांट करते थे, क्योंकि उनके विचार निर्णयात्मक, परिपक्व और संबद्ध

होते थे। वह कहा करते कि लिखते समय मुझे कलम उठाने की जरूरत नहीं पड़ती, क्योंकि में ऐसा महसूस करता हूं मानो कोई दूसरा मुझसे लिखवा रहा हो। मगर लेख हो या पत्र, जबतक वह उसे दुबारा पढ़ नहीं लेते थे, उसे जाने नहीं देते थे। दूसरों के लिखे अथवा टाइप किये पत्रों या लेखों को भी वह स्वयं देखकर ठीक करते थे। महादेवभाई तक अपने लेख उनसे ठीक करवाने के बाद भेज पाते थे। कोई रिपोर्टर उनका जबानी बयान उस समय तक नहीं दे सकता था, जबतक वह उसे मंजूर न करलें।

एक भाई ने गांधीजी द्वारा लिखित और गांधीजी के संबंध में लिखित व प्रकाशित पुस्तकों की सूची तैयार की है जिनकी संख्या तीन हजार से ऊपर है। उनके लिखे पत्रों, प्रवचनों और लेखों का जब पूरा संग्रह प्रकाशित होगा, तो वह दस-पंद्रह हजार पृष्ठों से कम न होगा और उनके संबंध में तो निरंतर कुछ-न-कुछ प्रकाशित होता ही रहेगा।

उनकी लिखी सर्वप्रथम पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' है जिसे उन्होंने सन् १९०८ में विलायत से आते समय जहाज पर लिखा था। इस पुस्तक में पश्चिमी सभ्यता का नग्न चित्र खींचकर उन्होंने उसकी बुराइयां बताई हैं और उससे बचने का आदेश किया है। साथ ही उन्होंने भारतीय सभ्यता की रूपरेखा भी दी है। उन्होंने उसमें लिखा है "भारत की मुक्ति इसीमें है कि गत् पचास वर्षों में जो कुछ उसने सीखा है, उसे वह भुला दे। रेल, तार, अस्पताल, वकील, और डॉक्टर तथा इसी श्रेणी की अन्य वस्तुओं को जाना होगा और कही जाने वाली उच्च श्रेणी के लोगों में पूरी समझ के साथ, धार्मिक भावना से और दृढ़ता के साथ सादा किसान-जीवन अपनाना होगा और उसी जीवन को सच्ची खुशी का स्रोत समझना होगा।" ४० वर्ष पहले लिखी अपनी उस पुस्तक में उन्होंने एक शब्द का भी परिवर्तन करना नहीं चाहा, बल्कि समय के साथ-साथ उसी दिशा में वह अधिकाधिक दृढ़ होते गये। सन् १९०८ की लिखी उनकी वह पुस्तक आज भी गांधीवाद को समझने की कुंजी कही जा सकती है।"

व्यावहारिक संसार को उनकी पांच साररूप देनें मुख्य हैं—

१—एक नया शस्त्र—सत्याग्रह—जिसमें "हमारी सब प्रकार के कष्ट सहन करने की शक्ति का तुम्हारी हर प्रकार के कष्ट पहुंचाने की ताकत के साथ, हमारे आत्मिक बल का तुम्हारे शारीरिक बल के साथ मुकाबला है। हम तुमसे घृणा नहीं करेंगे मगर तुम्हारा हुक्म नहीं मानेंगे। तुम चाहे जो करलो, हम अपनी सहन शक्ति से तुम्हें थका देंगे। और स्वतंत्रता-प्राप्ति में हम तुम्हारे दिल तथा विवेक को इस प्रकार प्रभावित करेंगे कि अंत में हम विजयी होंगे। हमारी विजय दोगुनी होगी— हम अपनी आजादी तो प्राप्त करेंगे ही, साथ ही हम अपने बन्धनकर्ताओं को भी जीत लेंगे।"

२—साध्य के लिए साधन की शुद्धि "सही परिणाम खराब साधनों से प्राप्त हो ही नहीं सकता। यदि साधन खराब है तो परिणाम भी खराब हुए बिना न रहेगा।

३—अपने सिद्धांतों के लिए सहन करने और मर मिटने का दृढ़ संकल्प।

४—कोई ऐसा आदर्श न हो जिसे स्वयं न अपनाया जा सके।

५—नैतिक संसार एक है और इसलिये व्यक्ति हो या समाज या समूची कौम हो, सबके आचरण एक जैसे होने चाहिएं।

ईसा को उनके समकालीन मानव समझ नहीं पाए थे। उन्होंने तो उनको फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया था। बाद में लोग समझे कि ईसा क्या थे।

बुद्ध भगवान् के देहावसान के कई सौ वर्ष बाद जाकर सम्राट् अशोक के जमाने में देश-देशांतर 'बुद्धं शरणं गच्छामि' के नाद से गूंज उठे थे। गांधीजी को भी आज लोग नहीं समझ पाएंगे। आज तो इस हिन्दू समाज के ही एक व्यक्ति ने उनकी हत्या की है, वही हिन्दू समाज जिसका वह निर्माण कर रहे थे। उनको समझने वाले सौ-दो-सौ वर्ष बाद पैदा होंगे और तबतक उनके संबंध में न जाने कितनी हजार पुस्तकें लिखी जा चुकी होंगी।

: २२ :

मुलाकातें

इस बार जब बापूजी दिल्ली आए तो उन्होंने मुलाकातें करवाने, उर्दू की डाक देखने, तथा रोजाना कार्यक्रम निश्चित करने का काम मेरे सुपुर्द कर दिया था। सुबह जब वह टहलते तो मैं उन्हें अखबार सुनाता और जब डा० दिनशा या डा० सुशीला न होते तो मालिश करता।

मुलाकातों का समय साधारणतः दो बजे से चार बजे तक का था, मगर इन दिनों मुलाकातें इतनी होती थीं कि किसी दिन उनकी संख्या हर पंद्रह मिनट के बाद एक की हो जाती थी। बापूजी जब थक जाते तो स्नेह से कहते— "क्या और सब काम बंद करके मुलाकातें ही करता रहूं ?"

मैं कहता—"तो क्या आज की मुलाकातें बंद करदूं ?"

तब वह झट बोलते—"नहीं, जो आ गया वह वापस क्यों जाय ? आने दो उसे।"

लोग अपनी कैसी-कैसी दुःखभरी कहानियां लेकर वहां आते थे। एक दिन के घंटे तो २४ ही होते थे, मगर हर कोई गांधीजी से मिलना चाहता और मुझसे आग्रह करता—"एक मिनट दिलवादो," मैं कहता—"भाई एक मिनट तो तुम्हारे वहां जाकर बैठने में ही लग जायगा। उस इन्सान पर रहम खाओ। उसे जरा तो सांस लेने दो।" मगर जो दुखिया है, उसके दिल की वही जानता है। बेचारे दुःख के मारे मुझसे कहते— "हमें सब जगह से धक्के ही मिले हैं; हर जगह निराशा का ही मुंह देखना पड़ा है। हम भी नहीं चाहते कि अपने बापू को सतायें, मगर अब उस द्वार पर आने के सिवा हमारे पास और कोई रास्ता भी तो नहीं रह गया, तो क्या हमें यहां से भी निराश लौटना पड़ेगा ?" मैं क्या जवाब देता इस दलील का ! कितने ही मुझसे बिगड़ते, गालियां देते, क्रोध दिखाते, सत्याग्रह करने की धमकी तक देते। कितनों को मैं समझाकर टाल देता, मगर कई तो ऐसे आते कि आखिर बापूजी के पास जाना ही पड़ता, यह

जानते हुए भी कि बापूजी का समय भरा है। बिना उनके सामने हकीकत रखे पीछा छूटना कठिन हो जाता। आखिर उनके सामने चुपचाप जा खड़ा होता। वह सिर उठाते और कहते—"कुछ कहना है क्या, ब्रजकृष्ण ?"

"जी, यह मामला है ,"

"अच्छा, उसे ले आओ ।"

मुलाकातें चलती रहतीं। वक्त पूरा हो जाता, मगर बीच में टोकूं कैसे ? उनके मुंह की ओर बार-बार देखता, लेकिन वह तो गहरे पानी में उतरे होते। आखिर १५ मिनट की बजाय आधा घंटा हो जाता और तब कहीं मुलाकात खतम होती ।

फौरन ही बापूजी बोल उठते— "अब कौन-कौन बाक़ी है ?"

"जी, अभी तो कई मुलाकातें बाकी हैं ।"

"तो तुमने बीच में रोका नहीं ?"

भला मैं क्या उत्तर देता ? कहता— "क्या बाकियों को दूसरा समय दे दूं ?"

"नहीं, नहीं, उन्हें आने दो। मैं अभी निबटाए देता हूं।"

और मुलाकातें फिर से जारी हो जातीं। जो आता था कृत्य-कृत्य होकर जाता था। जिसकी बात पूरी न हो पाती उससे बापूजी स्नेह के साथ कहते— "फिर आओ, ब्रजकृष्ण से समय ले लो ।"

मंत्रियों के लिए मुलाकात का कोई समय बंधा हुआ न था। वे तो जब चाहें आ सकते थे, क्योंकि गांधीजी अपने समय से भी अधिक उनके समय को महत्त्व देते थे। "उन्हें हकूमत चलानी है न ? जब अवकाश होगा तब ही तो आवेंगे ," यह थी उनकी दलील। दूसरों की मुलाकात के समय अक्सर कोई मंत्री आ जाता था और तब बड़ी गड़बड़ हो जाती थी। फिर भी बापूजी मुलाकातियों के लिए समय निकाल ही लेते थे। कहने को तो मुलाकात के लिए दो घंटे रखे गए थे, मगर उनका सिलसिला सुबह उठते ही शुरू हो जाता था।

बापूजी साढ़े तीन बजे जागा करते थे। उठते ही वह दातुन-कुल्ला करते। उस वक्त कोई साथी बातें शुरू कर देता। ३-४० से ४

तक प्रार्थना होती। प्रार्थना के बाद वे काम करने बैठते। किसी-किसी दिन वह समय भी मुलाकात में ही चला जाता। इसके बाद थोड़े समय के लिए वह फिर सो जाते और उठने के बाद टहलने चले जाते। उस समय खास मुलाकातें होतीं। अगर कोई मुलाकात न होती तो वह अखबार सुनते। टहलने के बाद वह मालिश करवाते, ठीक आधा घंटा। उस वक्त वह बंगला पढ़ते, अखबार सुनते या बातें करते। मुझे तो अक्सर उसी वक्त बातें करने का मौका मिलता। मालिश के बाद वह कमोड पर जाते थे और उसी समय अखबार भी पढ़ते थे। फिर उनका स्नान होता था। उस वक्त भी अक्सर मुलाकातें चलती थीं। इसके पश्चात् भोजन होता था और वह समय किसी खास मुलाकात में जाता था। खाने के बाद का समय बापूजी ने स्थानीय मौलवियों की मुलाकात के लिए रखा था। इन मुलाकातों के बाद वह थोड़ा सोते थे और उठते ही फौरन काम में लग जाते थे। किसी-किसी दिन यह समय भी मुलाकात में चला जाता था। दो बजे से तो मुलाकातों का समय निश्चित था ही, दो-चार तक चलता रहता था। यही समय उनका कातने का भी था। कातते-कातते बातें चलती रहती थीं। चार बजे उनका शाम का खाना होता था। वह वक्त भी अक्सर मुलाकात में चला जाता था। पांच बजे वह प्रार्थना में जाते थे और प्रार्थना के बाद आधा घंटा टहलते थे। वह समय भी मुलाकातों से घिर जाता था। टहलने के बाद वह प्रार्थना के भाषण को ठीक करते थे, क्योंकि बिना उनको दिखाये उनकी बाबत एक शब्द भी बाहर नहीं जा सकता था। भाषण ठीक करते-करते कोई मिलने चला आता था। अक्सर इस समय पंडितजी आया करते थे। इस प्रकार मुलाकातों और परामर्शों में रात के नौ-दस बज जाते थे और वह बिस्तर पर लेटने की तैयारी करने लगते थे। सोनेसे पहले बापूजी पैर धुलवाते थे, उस वक्त भी बातचीत जारी रहती थी। आखिर थकथकाकर वह बिस्तर पर लेटते। वह समय साथियों को अपने बापू से बात करने को मिलता और उसमें कभी-कभी ११ तक बज जाते। इसपर भी लोगों को यह शिकायत रहती कि हमें मुलाकात के लिए समय नहीं मिलता। बापूजी थककर कहते—"मेज पर कागजों का ढेर लगा है।

कितने ही पत्रों का उत्तर देना है। कब लिखूं, कब कुछ सोचूं ! सारा समय तो ये मुलाकातें ही खा जाती हैं।"

मैं कहता, "तो बन्द करदूं ?"

कहते—"नहीं, मैं यहां इन लोगों के लिए ही तो पड़ा हूं। इन्हें मेरे पास आकर कुछ भी संतोष मिल सके तो अच्छा है।"

गांधीजी का द्वार हरेक के लिए खुला था, फिर भी कुछ रोक लगानी पड़ती थी। कितने ही तो वहां पागल आते थे और कितने ही ऐसे आते थे जिनकी बातें सुनते जाओ मगर मतलब कुछ नहीं। कोई रोजगार की तलाश में आता, कोई नौकरी की और कोई मकान की। किसीके घर चोरी हो गई है, किसीकी बिल्टी नहीं छूटती, किसीका माल सड़ रहा है, किसीका बच्चा खोगया है, किसीका सब कुछ खो गया है। कोई अपने जखम दिखाने आया है, किसीके परिवार के सब आदमी कत्ल हो गये हैं और किसीकी मां-बेटी के साथ घोर अत्याचार हुआ है। सैंकड़ों और हजारों किस्म की शिकायतें लेकर लोग बापूजी के पास पहुंचते थे और बहुत थोड़े ऐसे होंगे जो संतोष पाकर न गए हों। लोग उनके प्रार्थना-प्रवचनों को खास महत्त्व देते थे। हरएक यही मानता था कि यदि उसके दुःख का गांधीजी अपने भाषण में जिक्र कर देंगे तो वह दुःख क्षणमात्र में दूर हो जायगा। कई भाई तो आकर मुझसे इतनी ही मांग करते कि अच्छा जी, यदि हम मिल नहीं सकते तो हमारी यह बात प्रार्थना में कहलवा दें, हमारा काम बन जायगा।

मैं सोचता हूं कि जो लोग सुबह से रात तक बिड़ला-भवन में तांता बांधे रहते थे और बापूजी को होश नहीं लेने देते थे अब कहां जाते होंगे। उनकी कौन सुनता होगा ! क्या उनका हृदय बापूजी को याद करके रोता न होगा ! मुझसे कितने ही भाई मिले हैं जिन्होंने कहा है कि हम तो आस लगाये बैठे थे कि गांधीजी पंजाब जायेंगे और हम अपने घरों को लौटेंगे, लेकिन अब हमारी सब उम्मीदें खतम होगईं, अब हमें अपना घर देखना नसीब न होगा। कोई भी शरणार्थी बापूजी को अपनी दुःखभरी कहानी सुना सकता था। उनके लिए आम इजाजत थी।

अक्सर एक ही स्थान के दुखिये बार-बार आकर एक ही बात सुनाते लेकिन बापूजी बड़े धीरज के साथ सबकी सुनते। कई तो बापूजी पर क्रोध दिखाते, मगर वह शांत बने रहते और उन्हें तसल्ली देकर भेजते।

बिड़ला-भवन की पड़ोसवाली कोठी में कुछ शरणार्थी आ गये थे। सरकार ने उस कोठी को लेना चाहा। उन लोगों को नोटिस मिला। पुलिस कोठी खाली करवाने आ गई। शरणार्थी लोग बापूजी के सामने आ खड़े हुए और उनकी औरतें लगीं रोने। बापूजी ने मंत्री महोदय को बुलवा भेजा और उनसे कहा कि जबतक इन लोगों को दूसरा स्थान रहने को न दो तबतक तुम इन्हें निकाल नहीं सकते। मन्त्री महोदय को बापूजी की बात माननी पड़ी। शरणार्थी लोग आज तक उसी आधी कोठी में आबाद हैं और बापूजी को याद करते हैं।

मुलाकातों के समय वह इतने विभिन्न विषयों पर बातें करते थे कि हम लोग चकित रह जाते थे। अभी वह आकाश की बातें कर रहे हैं तो दूसरे क्षण पाताल की बातें करने लग जायेंगे। अभी वह गवर्नर-जनरल से भारत के भविष्य की बातें कर के आए ही हैं कि किसी आदमी ने उनके सामने अपने घर के झगड़े छेड़ दिये। पति-पत्नी की नहीं बनती, विवाह किसका किससे हो, घर का खर्च कैसे चले, व्यापार कौनसा हो आदि बातें तक उनकी मुलाकातों में होतीं। सरदार और नेहरू जी अभी हकूमत सम्बन्धी बातें करके गए ही हैं कि ताड़ का गुड़ कैसे बने, चावल कौनसा खाना चाहिए, सब्जी और फल के क्या गुण हैं, प्राकृतिक चिकित्सा के क्या लाभ हैं, इन विषयों पर बातें छिड़ गईं। कोई राजदूत अभी अपने देश की बातें करके गया है कि एक वैज्ञानिक ने साइन्स की बातें शुरू करदीं। कभी तारों की बातें चल पड़तीं तो कभी एटम बम की; कभी लड़ाई की, तो कभी अध्यात्म की। गर्ज यह कि मुलाकातों के विषय इतने विभिन्न होते और बापूजी हर विषय पर इतनी सरलता और जानकारी के साथ बातें करते कि सुनने वाले के हृदय में अनायास यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या वह कोई विश्व-कोष हैं जो सब बातों का पता रखते हैं?

बापूजी की याददाश्त कमाल की थी। मैंने तो और किसीकी

इतनी जबरदस्त स्मरण-शक्ति देखी ही नहीं। हम क्षण भर पहले की बात भूल जाते हैं, मगर उन्हें पचास वर्ष पहले की घटना ऐसे याद रहती थी जैसे वह आज सुबह हुई हो। पचास वर्ष पहले अमुक व्यक्ति मिलने आया था, उस वक्त वह इस रंग की टाई लगाये था, इस किस्म का कोट पहने था, उसका जूता इस प्रकार का था, उसने ये बातें कीं। बापूजी ये बातें कभी भी बता सकते थे। हजारों आदमी उनसे मिलने आते थे, लेकिन बापूजी एक बार जिसका चेहरा देख लेते उसका नाम उन्हें सदा के लिए याद हो जाता। उसके बाद चाहे वह उनसे बरसों बाद क्यों न मिले, जरासा हवाला मिलते ही बापूजी उससे 'हां हां' कह कर उस दिन की बातें बतानी शुरू कर देते। मैं सुन-सुनकर हैरान होता था कि इन्हें इतनी बातें, इतनी शक्लें और इतने नाम कैसे याद रहते हैं? दक्षिण अफ्रीका के अनुभव तो उनके लिए कोषरूप थे कोई प्रसंग चला और उन्होंने वहां का हवाला दिया। वह भाषण देकर आते थे और बिना नोट किये अपनी कही हुई सारी बातें लिख डालते थे। यदि कोई उनकी कही किसी बात का गलत हवाला देने लगता तो वह तुरंत उसकी भूल को पकड़ लेते।

: २३ :

जीवन-झांकी

गांधीजी का जन्म आश्विन वदी १२ संवत् १९२५ (अर्थात् २ अक्तूबर, १८६९) को पोरबंदर (सुदामापुरी) में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री कर्मचंद गांधी और उनकी माता का नाम श्रीमती पुतलीबाई था। उनका बचपन पोरबन्दर में ही बीता और विवाह १३ वर्ष की आयु में श्रीमती कस्तूरबा के साथ हुआ था। १८८७ में मैट्रिक की परीक्षा पास करके १८८८ में वह बैरिस्टरी पास करने विलायत चले गए थे। जाते समय उनकी माता ने उनसे तीन प्रतिज्ञाएं ली थीं कि वह मांस, मदिरा और स्त्री इन तीनों से दूर रहेंगे। १८९१ में वह बैरिस्टर बने और देश लौट आए। बैरिस्टरी करने के विचार से १८९३ में वह अफ्रीका चले गए।

गांधीजी का सार्वजनिक जीवन दक्षिण अफ्रीका में शुरू हुआ, जहां उन्होंने मनुष्य द्वारा मनुष्य पर किये जानेवाले अमानुषिक अन्यायों और अत्याचारों को अपनी आंखों से देखा और स्वयं तरह-तरह के अपमान सहे। वैरिस्टर होते हुए भी वह 'कुली वैरिस्टर' कहलाये, क्योंकि वहां के सफेद वर्ण वाले अंग्रेज हिन्दुस्तानियों को कुली कहकर पुकारते थे। हिन्दुस्तानी न तो गोरों के साथ एक गाड़ी में बैठ सकते थे, न रेल के दर्जे में साथ सफर कर सकते थे, न एक पटरी पर चल सकते थे और न एक होटल में ठहर सकते थे। गांधीजी ने गुलामी की इस भयंकरता का बड़ी तीव्रता के साथ अनुभव किया। उनके जीवन में क्रांति की आग भड़क उठी और उन्होंने मनुष्य द्वारा मनुष्य पर किये जाने वाले अन्यायों के विरुद्ध आवाज उठाने का निश्चय कर लिया।

१८९४ में उन्होंने नेटाल कांग्रेस की स्थापना की और १९०४ में 'इंडियन-ओपिनियन' नाम के एक साप्ताहिक पत्र का संपादन करना शुरू किया जिसके सम्बंध में उन्होंने एक बार लिखा—"इसमें मैं प्रति सप्ताह अपनी आत्मा को उंडेलता हूं और उस चीज को समझने का प्रयत्न करता हूं जिसे मैं सत्याग्रह नाम से पहचानता हूं।"

इन्हीं दिनों बापूजी ने रस्किन की 'अन्टू दिस लास्ट' पुस्तक पढ़ी जिससे उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। उन्होंने उसका भाषांतर 'सर्वोदय' के नाम से किया जिसके सिद्धांत ये हैं :

(१) सबके भले में अपना भला समझो; (२) वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एक-सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का हक दोनों को एक-सा है और (३) मजदूर का और किसान का, अर्थात् परिश्रम का, जीवन ही सच्चा जीवन है।

इन दिनों बापूजी के विचारों और मानस में भारी परिवर्तन हो रहे थे। यह उनका साधनाकाल था। १९०६ में उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन का व्रत ले लिया।

इसी वर्ष उन्हें हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिए दक्षिण अफ्रीका की सरकार से लड़ना पड़ा। उन्होंने आठ वर्ष सत्याग्रह की लड़ाई चलाई।

आठ बार वह जेल गए, पर अंत में उनको सफलता मिली। १९१२ में उन्होंने टाल्स्टाय-आश्रम स्थापित किया और १९१४ में वहां का काम समाप्त कर वह विलायत चले गए। वहां पहुंचते ही पहला महायुद्ध शुरू हो गया। काम की अधिकता के कारण बापूजी को प्लूरिसी हो गई और १९१५ में उन्हें भारत लौट आना पड़ा।

दक्षिण अफ्रीका में बापूजी को सत्याग्रह द्वारा जो सफलता प्राप्त हुई थी, उसकी चर्चा भारत में फैल तो चुकी थी, मगर सत्याग्रह के स्वरूप से भारतवासी बिलकुल अनभिज्ञ थे। हिन्दुस्तान पहुंचते ही बापूजी के सामने एक-के-बाद एक ऐसी समस्याएं उपस्थित होने लगीं कि उन्हें शीघ्र ही अपने सत्याग्रह-अस्त्र का यहां भी प्रयोग करना पड़ा।

१९१५ में २५ मई को अहमदाबाद के पास कोचरब में सत्याग्रह-आश्रम स्थापित करने के बाद सबसे पहले बापूजी को बिहार प्रांत में चम्पारन जाना पड़ा, जहां 'तीन कठिया' के अन्यायकारी कानून से छुटकारा दिलाने को उन्होंने सत्याग्रह ठाना। राजेन्द्रबाबू, ब्रजकिशोर बाबू और दूसरे कितने ही बड़े-बड़े वकीलों व रईसों का जीवन ही बदल गया। हमारे वर्त्तमान राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू सबसे पहले व्यक्ति हैं जो बापूजी के प्रभाव में आए। चम्पारन सत्याग्रह के बाद ही बापूजी को अहमदाबाद के मिल-मालिकों से लड़ना पड़ा और मजदूरों ने उनसे सत्याग्रह का पाठ सीखा। उनसे पहले किसीने अहिंसक हड़ताल का नाम ही न सुना था।

१९१९ में गांधीजी भारत के राजनैतिक क्षेत्र में पूरी तरह से उतर आए और रौलेट एक्ट के विरुद्ध आंदोलन खड़ा करके उन्होंने देशभर में सत्याग्रह की लहर फैला दी। उस समय हिन्द के राजनैतिक क्षेत्र में दो दल थे : (१) गर्म दल, जिसके नेता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक थे और (२) नर्म दल, जिसके नेता श्री श्रीनिवास शास्त्री थे। कांग्रेस का काम तब यहीं तक सीमित था कि वर्ष-भर में एक बार अधिवेशन कर लिया जाता था और प्रस्ताव पास करके सरकार के पास निवेदन-पत्र भेज दिया जाता था। इसके बाद वह साल भर के लिए मौन हो जाती थी।

गांधीजी का तरीका बिलकुल जुदा था। उन्होंने कांग्रेस की शकल

ही बदल दी। प्रस्ताव पास करवाकर हकूमत के पास अर्जी तो वह भी भेजते थे, मगर उनकी अर्जी मुर्दा नहीं होती थी, उसके पीछे अमल करने की शक्ति भी होती थी। वह जो कहते थे पूरी तरह विचार करके कहते थे और जो निश्चय करते थे, तुरन्त ही उसपर अमल करना शुरू कर देते थे। चूंकि वह कुछ छिपाकर नहीं रखते थे, इसलिए वह हकूमत को पहले से ही बता देते कि वह क्या-क्या करनेवाले हैं। सरकार के लिए ये बातें नई होती थीं। वह उनको रोकने के तरीके नहीं जानती थी। वह तो जोर-जबरदस्ती और हिंसा पर खड़ी थी, इसलिए वह हरबार कुंठित होकर रह जाती थी।

सत्याग्रह का पहला प्रभाव जनता के दिलों से भय को दूर करने के रूप में प्रकट हुआ। उस समय कुछ सशस्त्र क्रान्तिकारी भी थे जो छिपकर हिंसा से काम लेते थे, मगर जल्द ही पकड़े जाते थे। उसका परिणाम इतना प्रतिकूल निकलता था कि प्रगति की बजाय और भी पतन हो जाता था और जनता के हृदय में आतंक छा जाता था। गांधीजी के मार्ग ने लोगों में उत्साह और अभय उत्पन्न कर दिया और त्याग व कुर्बानी की भावना को जन्म दिया।

जो लोग लाल पगड़ी को देखकर कांप उठते थे, वे अब खुलेआम उनकी लाठियों और गोलियों का प्रहार सहने लगे। जेल जाना जो पहले अपमानसूचक गिना जाता था, पवित्र-यात्रा कहलाने लगा। न केवल मर्द बल्कि हजारों की संख्या में औरतें तक जेल जाने लगीं। जो बगावत छुप-छिपकर होती थी, वह खुलेआम होने लगी।

गांधीजी ने घर-घर क्रांति की आग लगा दी। लड़का बाप से जुदा हुआ, पति पत्नी से, भाई बहन से, मित्र मित्र से। हरेक ने अपने बृहत् कर्त्तव्य की ओर ध्यान दिया और देश को स्वतन्त्र करवाने में यथाशक्ति योग देना आरम्भ किया। गांधीजी ने वकीलों से वकालत छुड़वाई और डाक्टरों से डाक्टरी। विद्यार्थियों से पढ़ना छुड़वाया और नौकरी पेशावालों से नौकरी। खिताबयाफ्ताओं से उन्होंने खिताबों का मोह छुड़वाया और धनिकों से माया का मोह, राजाओं से राजपाट छुड़वाया, शराबियों से शराब

छुड़वाई और जुआरियों से जुआ। इसी तरह जो लोग ऐश व आराम का जीवन व्यतीत कर रहे थे, उनको उस जीवन की ओर से उदासीन बनाकर बापूजी ने उन्हें घरों से बाहर खींच बुलाया। जो विदेशी सभ्यता और विदेशी वस्तुओं के आशिक थे, उन्हें उन्होंने मोटे कपड़े की लंगोटी बंधवा दी। कैसा था उनका जादू! वह धर्मगुरु न थे मगर जो नास्तिक थे, उनसे भी उन्होंने राम-नाम का उच्चारण करवा लिया। जो बड़े-बड़े कल-कारखानों के पुजारी थे, उनसे उन्होंने चरखा चलवा दिया। जो पांच कपड़ों और बढ़िया हैट के बिना घर से बाहर पैर नहीं रख सकते थे, उन्हें नंगे बदन और नंगे पैर घुमा दिया; जो पर-धर्मी के हाथ का छुआ न खाते थे और अपनी ही जैसी मनुष्य-योनि से उत्पन्न लोगों को नीच मानते और उन्हें अचानक छू लेने पर नहाने की जरूरत समझते थे उन्हींसे उन्होंने उनके पाखाने तक साफ करवा दिये। जिन्होंने अपने घर की दीवारों को छोड़कर सूर्य भगवान् के दर्शन तक नहीं किये थे, उन स्त्रियों को उन्होंने मर्दों के बीच खुले मैदान में लाकर खड़ा कर दिया। कहां तक बताऊं उनकी क्रांति की बातें! जिस ओर निगाह डालता हूं सब-कुछ गांधीमय ही दिखाई देता है। वह गरीब और बेबस किसान, जो सदा धक्के ही खाता आया था, उसकी इतनी हिम्मत कि लगान देने से इन्कार कर दे, उसके खेत उजाड़े जा रहे हों, उसके प्यारे पशु उसकी आंखों के सामने नीलाम किये जा रहे उसका घर-बार लूटा जा रहा हो, उसके भाई-बन्द जेल में बंद किये जा रहे हों और वह हंसता रहे! क्या गांधीजी से पहले किसीने ऐसी बातें सुनं थीं? वह बेचारा कुली जिसे बेगार करते-करते दम नहीं आता था, भा और अपमान ही जिसके भाग्य में बदा था, क्या थी उसकी मजाल f वह साहब बहादुर की बेगार करने से इन्कार कर दे और साहब बहा उसका कुछ न कर सके? गांधीजी ने सब अनहोनी बातें होनी कर दिखा

१९१९ में गांधीजी जब अमृतसर कांग्रेस में शरीक हुए तो तिल महाराज भी अपनी पार्टी के साथ आए हुए थे। उस समय तिलक महा ही देश के सबसे बड़े नेता माने जाते थे। मगर उन्होंने तुरन्त महसूस लिया कि गांधी-युग आरम्भ हो गया है। और सहर्ष अपना स्थान गांध

के लिए छोड़ दिया। १९२० में जब गांधीजी पूर्ण असहयोग की तैयारियां कर रहे थे, तिलक महाराज उन्हें आशीर्वाद देकर सदा के लिए विदा हो गए।

तिलक महाराज से उतरकर गर्म दल के नेताओं में लाला लाजपतराय, मौलाना आजाद और अलीभाई थे। १९१४ के जंग के जमाने में हिन्द सरकार ने इन्हें भारत रक्षा-कानून के अन्तर्गत बड़ा त्रास पहुंचाया था, इन्हें नजरबन्दी, देश-निर्वास और जेल की यातनाएं सहनी पड़ी थीं। मगर इन सब नेताओं की राजनीति गांधीजी की राजनीति से बिलकुल भिन्न थी। गांधीजी ने भारत की राजनीति की बागडोर अपने हाथ में लेकर इन नेताओं के जीवन और कार्य-प्रणाली में भी भारी परिवर्तन कर दिया। साथ ही उन्होंने हर प्रांत में नये-नये नेताओं और कार्यकर्त्ताओं का निर्माण भी शुरू कर दिया। चिराग को देखकर परवाने खुद-ब-खुद न्यौछावर होने लगे। युक्तप्रांत से पं० मोतीलाल नेहरू उठे। उनके साथ उनके चिरंजीव पुत्र पं० जवाहरलाल और उनका सारा परिवार उठा। प्रत्येक जिला और देहात जाग उठा। बंगाल में देशबन्धु चित्तरंजन दास आगे बढ़े। वह भी अकेले नहीं आये, सैकड़ों और हजारों की संख्या में कार्यकर्त्ता उनके साथ निकल पड़े। गुजरात और बम्बई से विट्ठलभाई पटेल और वल्लभभाई पटेल निकले। वल्लभ काका तो गुजरात क्या, देशभर में सरदार कहलाने लगे; वहां के कार्यकर्त्ताओं का तो कहना ही क्या वह तो बापू का अपना प्रांत ठहरा। मध्यभारत में सेठ जमनालाल बजाज ने नेतृत्व सम्भाला। महाराष्ट्र में डा० अभ्यंकर, मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य, श्री श्रीनिवास आयंगर व अन्य कितने ही नेता व कार्यकर्त्ता आगे बढ़े। बिहार में तो राजेन्द्रप्रसादजी पहले से ही मौजूद थे। उड़ीसा, आसाम आदि से भी कई एक नये सेनापति अपने दलबल के साथ स्वतन्त्रता के संग्राम में कूद पड़े। दिल्ली भला कैसे चुप बैठती! यहां से भी हकीम अजमल खां डा० अन्सारी और स्वामी श्रद्धानन्द उठे। सरहद में खान अब्दुल गफ्फार खां सरहदी गांधी ही कहलाने लगे।

इस प्रकार सारा देश नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की हलचलों से गूंज उठा और थोड़े ही समय में भारत सरकार का सिंहासन सत्याग्रह के

भूकम्प से हिलने लगा। जगह-जगह विदेशी कपड़ों की होलियां सुलगने लगीं और घर-घर चरखे का संगीत सुनाई देने लगा। जेलों के दरवाजे खुल गए, नर-नारी बड़ी उमंगों के साथ उनमें प्रवेश करने लगे। माताएं अपने पुत्रों को, बहनें अपने भाइयों को, पत्नियां अपने पतियों को बड़े प्रेम के साथ विदा करती थीं और अवसर आने पर स्वयं भी अंदर जा पहुंचती थीं।

१९२१ में बापूजी ने कांग्रेस का पहला विधान तैयार किया। उसके बाद कांग्रेस में जो-जो परिवर्तन हुए, बापूजी की ही देखरेख में हुए। उनके प्रभाव से कांग्रेस ने इतनी शक्ति प्राप्त की कि देखते-ही-देखते वह एक छोटे पौधे से बढ़कर विशाल वृक्ष बन गई और उसकी जड़ें पाताल तक पहुंच गईं। इसी कांग्रेस ने अनेक बार सत्याग्रह आंदोलन किया, स्वराज्य की लड़ाइयां लड़ीं और अन्त में देश को आजादी दिला दी। यह सब गांधीजी की ही देन है। उनका अन्तिम लेख कांग्रेस की पुनर्रचना पर था, जिसपर ३० जनवरी की उस रक्त-रंजित रात्रि को विचार होने वाला था। वह कांग्रेस की बढ़ती हुई खराबियों को निकाल कर उसे एक लोक-सेवक-संघ का रूप देना चाहते थे। वह जनता की मनोवृत्ति को जानते थे और उसे प्रलोभनों से बचाकर सत्य के मार्ग पर ले जाना चाहते थे।

इस प्रकार जितना भी विचार किया जाय, आज कोई ऐसा सच्चा कार्य देखने में नहीं आयगा, जिसमें बापूजी का हाथ न हो। किसी कार्य को करते समय उनकी सलाह और उनका आशीर्वाद लिये बिना किसी को संतोष और आत्म-विश्वास होता ही न था। उस काल-रात्रि के दिन पंडित जवाहरलाल कहने लगे कि उन्हें बापूजी से हर काम में सलाह लेने की इतनी आदत पड़ गई थी कि जब वह उनको श्मशान ले जाने की योजना बनाने लगे तो सहसा यह सोचकर उठ खड़े हुए कि चलकर बापू की सलाह ले लूं; मगर तुरंत ही ध्यान आया कि बापू अब कहां ?

अर्जुन ने भगवान् से पूछा था—"आपका नित्य चिन्तन करते-करते मैं आपको कैसे पहचान सकता हूं ? किसकिस रूप में मुझे आपका चिन्तन करना चाहिए ?" भगवान् ने कहा था—"मेरी विभूतियों का

अंत ही नहीं है, जो कुछ भी विभूतिमान, लक्ष्मीवान या प्रभावशाली है, उसको मेरे तेज के अंश से ही हुआ समझो।"

ठीक यही बात बापूजी के लिए कही जा सकती है। उनकी विभूतियों का, उनके कृत्यों का, उनकी सेवाओं का, उनके त्याग और तपस्या का न कोई माप है, न गणना है, न अन्त है। वह न होते तो न मालूम हम कितने वर्षों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े पड़े रहते? हमारी स्वतन्त्रता के दाता और आराध्य देव यदि बापूजी नहीं तो और कौन है? जो कुछ विभूतिमान, लक्ष्मीवान या प्रभावशाली है, सब उनकी ही देन है, सब उनकी ही तपस्या का परिणाम है। उनके एक अंशमात्र से यह सारा हिंदसंघ स्थित है। आज यहां जितने नेता और कार्यकर्त्ता हैं, सब उनके ही तेज से प्रकाशित हो रहे हैं। वह वास्तविक अर्थों में हमारे राष्ट्रनिर्माता और राष्ट्रपिता थे।

क्या उनके दिखाये मग पर चलने की बुद्धि ईश्वर हमें देगा? और क्या हम उनके बताये इस उपदेश का अनुसरण कर सकेंगे।

"न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम्
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।"

"न मैं राज्य चाहता हूं, न स्वर्ग की इच्छा करता हूं। मैं मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं तो यही चाहता हूं कि दुःख से तपते हुए प्राणियों की पीड़ा का नाश हो।"

समाप्त

: २४ :

परिशिष्ट

बापू के प्रिय भजन

: १ :

वैष्णव जन

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे,
सकल लोकमां सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे;
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
राम नामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो तेनं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे।

—नरसी मेहता

: २ :

हरिनो मारग

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने;
परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलती लेवुं नाम जोने।
सुत वित दारा शीश समरपे, ते पामे रस पीवा जोने;
सिंधु मध्ये मोती लेवा मांही पड्या मरजीवा जोने।
मरण आंगमे ते भरे मूठी दिलनी दुग्धा वामे जोने;
प्रेमपंथ पावकनी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने;
मांही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा दाझे जोने।
माथा साटे मोंघी वस्तु, सांपडवी नहि सहेल जोने;
महापद पाम्या ते मरजीवा, मूकी मननो मेल जोने।
राम-अंमलमां राता माता पूरा प्रेमी परखे जोने;
'प्रीतम' ना स्वामीनी लीला ते रजनीदन नरखे जोने।

: ३ :

और नहीं कछु काम के

और नहीं कछु काम के,
मैं भरोसे अपने राम के—औ
दोऊ अक्षर सब कुल तारे,
वारी जाऊं उस नाम पे—औ
तुलसिदास प्रभु राम दयाघन,
और देव सब दाम के—औ
—तुल

: ४ :

हे गोविन्द

हे गोविन्द, हे गोपाल, हे गोविन्द ।
राखो शरण अब तो जीवन हारे ॥ हे गोविन्द ॥
नीर पीवन हेतु गयो, सिन्धु के किनारे,
सिन्धु बीच बसत ग्राह चरन धरि पछारे ॥१॥
चार प्रहर जुद्ध भयो, लै गयो मंझधारे,
नाक-कान डुवन लागे कृष्ण को पुकारे ॥२॥
द्वारका में शब्द गयो, शोर भयो भारे,
शंख-चक्र-गदा-पद्म, गरुड़ लै सिधारे ॥३॥
'सूर' कहै श्याम सुनो, शरण हूं तिहारे,
अबकी बार पार करो, नंद के दुलारे ।४॥

—सूरदास

: ५ :

एकला चलो रे

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे तबे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो , एकला चलो रे।
यदि केउ कथा ना कय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि सबाई थाके मुख फिराये, सबाई करे भय—
तबे परान खुले
ओ तुई मुख फुटे तोर मनेर कथा एकला बोलो रे।
यदि सबाई फिरे जाय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,

यदि गहन पथे जावार काले केउ फिरे ना चाय—
तवे पथेर कांटा
ओ, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो ना धरे, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि झड़ बादले आंधार राते दुआर देय घरे—
तवे बज्रानले
आपन बुकेर पांजर ज्वालिये निये एकला जलो रे।

—रवींद्रनाथ ठाकुर

यदि तेरी पुकार सुनकर कोई नहीं आता तो तू अकेला ही चल!
अकेला चल, अकेला चल, अकेला ही चल!
यदि किसीके मुंह से शब्द न निकले। अरे, अरे, ओ अभागे!
यदि सभी मुंह मोड़ लें, सभी भयभीत हों,
तब अपने प्राणों को उन्मुक्त कर तू स्वयं ही अपनी तान छेड़ दे।
अकेला ही तान छेड़ दे!
यदि तेरे संगी-साथी सभी लौट जायं। अरे, अरे, ओ अभागे!
यदि दुर्गम पथ में कोई तेरा साथ देने का इच्छुक न हो।
कंटकाकीर्ण मार्ग में
रक्तरंजित चरणों से, ओ भाई, तू अकेला ही चल।
यदि प्रकाश के लिए कोई दीप नहीं रखता,
यदि मेघाच्छन्न और अंधकारपूर्ण रात्रि में कोई घर का द्वार बन्द कर देता है,
तब विद्युत बनकर
सबका तू अकेला ही दीपक बनकर जल।

: ६ :

प्रेमल ज्योति[1]

प्रेमल ज्योति तारो दाखवी मुज जीवनपंथ उजाल। ध्रु०
दूर पड्यो निज धामथी हुं ने घेरे घन अंधार,
मार्ग सूझे नव घोर रजनीमां, निज शिशुने संभाल,
मारो जीवनपंथ उजाल ॥१॥
डगमगतो पग राख तुं स्थिर मुज, दूर नजर छो न जाय,
दूर मार्ग जोवा लोभ लगीर न, एक डगलुं बस थाय,
मारे एक डगलुं बस थाय ॥२॥
आज लगी रह्यो गर्वमां हुं ने मागी मदद न लगार,
आप बले मार्ग जोईने चालवा हाम धरी मूढ बाल,
हवे मागुं तुज आधार ॥३॥
भभकभर्या तेजथी हुं लोभायो, ने भय छतां धर्यो गर्व,
वीत्यां वर्षो ने लोप स्मरणथी स्खलन थयां जे सर्व,
मारे आज थकी नवुं पर्व ॥४॥
तारा प्रभावे निभाव्यो मने प्रभु आज लगी प्रेमभेर,
निश्चे मने ते स्थिर पगलेथी चलवी पहोंचाडशे घेर,
दाखवी प्रेमल ज्योतिनी शेर ॥५॥
कर्दमभूमि कळणभरेली, ने गिरिवर केरी कराड,
धसमसता जल केरा प्रवाहो, सर्व वटावी कृपाल,
मने पहोंचाडशे निज द्वार ॥६॥
रजनी जशे ने प्रभात ऊजळशे, ने स्मित करशे प्रेमाळ,
दिव्यगणोनां वदन मनोहर मारे हृदय वस्यां चिरकाल,
जे में खोयां हतां क्षण वार ॥७॥

---

१ 'लीड काइंडली लाइट' का अनुवाद

रघुपति राघव राजाराम

पतित पावन सीताराम

ईश्वर अल्ला तेरे नाम

सवको सन्मति दे भगवान !